ओ३म्

इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार,19 मई 2013

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 19 मई, 2013 से 25 मई, 2013

वै. शु.10 ● वि० सं०–2069 ● वर्ष 77, अंक 56, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,113 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. जीन्द में नव-प्रविष्ट बच्चों का हुआ उपनयन संस्कार

डी.ए.वी. विद्यालय जीन्द में नव प्रवेश पाने वाले बच्चों का 'उपनयन संस्कार' समारोह आयोजित किया गया। इस अनुष्ठान का शुभारंभ हवन–यज्ञ से हुआ। यज्ञ पुरोहित के रूप में श्री फूल कुमार शास्त्री जी उपस्थित थे। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि स्थानीय प्रबन्धक समिति के वरिष्ठ सदस्य श्री मोहनलाल आर्य जी थे। यज्ञ मंडप में नए बच्चों ने यजमान की भूमिका नभाते हुए यज्ञवेदी में आहुतियाँ डालीं। प्राचार्य ने कहा कि अब बच्चों का नाम डी.ए.वी. के साथ जुड़ गया है, अब ये डी. ए. वी. परिवार के सदस्य के नाम से जाने जाएंगे। उन्होंने कहा कि यह वह समय है जब बच्चा आचार्यगण के साथ जुड़ अपनी शैक्षणिक आध्यात्मिक व आत्मिक यात्रा आरंभ कर परिपक्व नागरिक बनने की ओर अग्रसर होता है। आचार्य फुलकुमार शास्त्री जी ने बच्चों को आशीर्वाद देते हुए कहा कि आज के युग में सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हम वैदिक मूल्यों का आचरण करते हुए वर्षों पुरानी संस्कृति को बचाएं। प्राचार्य जी ने अभिभावकगण, अतिथिगण एवं समस्त आचार्यगण का आभार व्यक्त किया तथा उनको सम्मानित किया। कार्यक्रम के अन्त में प्रसाद वितरण कर शान्ति पाठ के साथ कार्यम का समापन हुआ।

आर. आर बावा डी.ए.वी.बटाला में महर्षि दयानन्द जन्मोत्सव

आर.आर.बावा डी.ए.वी.कॉलेज फॉर गर्ल्ज़, बटाला में प्रिंसीपल प्रो. डा. (श्रीमती) अजय सरीन के मार्गदर्शन में एवं प्रो. राज शर्मा को–आर्डीनेटर स्वामी दयानन्द अध्ययन केन्द्र के तत्वावधान में स्वामी दयानन्द जन्मोत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें कॉलेज के प्राध्यापकों, कर्मचारी वर्ग एवं समूह छात्राओं ने भाग लिया लिया। इस अवसर पर प्रो. श्रीमती तीर्थ बाला ने स्वामी दयानन्द जी के जीवन के प्रेरणादायक प्रसंगों पर चर्चा की। प्रो. सुनील दत्त ने वैदिक संस्कृति एवं यज्ञ प्रक्रिया की सविस्तार व्याख्या की एवं कहा यज्ञ एक महत्त्वपूर्ण कर्म हैं। प्रत्येक आर्य (श्रेष्ठ) के लिए यज्ञ का करना एवं कराना मुख्य कर्त्तव्य है। प्रो. राज शर्मा ने स्वामी दयानन्द अध्ययन केन्द्र के द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के जीवन से सम्बन्धित पत्रक भी वितरित किये। इस अवसर पर श्री धर्मपाल, श्री तरसेम शर्मा, श्री अनीश अग्रवाल, प्रो.सुनयना आदि प्राध्यापक उपस्थित थे। सत्यावती गोयल डी.ए.वी. प्राईमरी स्कूल बटाला एवं आर.पी. अग्रवाल डी.ए.वी. प्राईमरी स्कूल बटाला में जाकर प्रो. राज शर्मा ने बच्चों में पाठ्य सामग्री का वितरण भी किया।

स्कूलों के प्रिंसीपलों श्रीमती सरोज बलग्गन एवं श्री देव राज कौंडल ने प्रो. राज शर्मा का धन्यवाद किया।

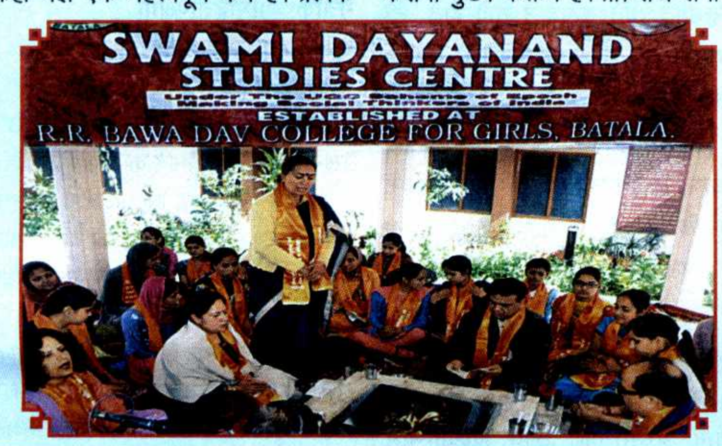

डी.ए.वी. सैक्टर-15ए, चण्डीगढ़ में गायत्री महायज्ञ एवं भजन संध्या

डी.ए.वी. विद्यालय सै.–15ए, चण्डीगढ़ में नये सत्र 2013–14 का शुभारंभ हेतु आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, चण्डीगढ़ एवं डी.ए.वी. विद्यालय, सैक्टर–15ए, चण्डीगढ़ के संयुक्त तत्त्वावधान में गायत्री महायज्ञ एवं भजन संध्या का आयोजन बहुत ही धूम–धाम से किया गया। प्राचार्या डॉ. श्रीमती राकेश सचदेवा एवं श्रीमती हरदेश वर्मा जी इस गायत्री महायज्ञ में यजमान बने। इस गायत्री महायज्ञ में विद्यालय के सभी अध्यापक व अध्यापिकाओं तथा अन्य सभी कर्मचारियों ने सम्मिलित होकर आहुतियाँ प्रदान की हैं। महायज्ञ में कक्षा नवमी, दसवीं एवं बारहवीं के विद्यार्थीवर्ग एवं उनके अभिभावकों ने भी सम्मिलित होकर अपनी आहुतियाँ प्रदान की हैं। भजन संध्या का शुभारंभ विद्यालय विद्यालय के संगीत अध्यापिका श्रीमती ज्योति महाजन जी के द्वारा ईश्वर भक्ति के भजन गाकर किया गया। तत्पश्चात् संगीत विभाग के सभी अध्यापक व अध्यापिकाओं ने मिलकर आध्यात्मिक एवं राष्ट्रभक्ति के भजन सुनाये। भजन के माध्यम से महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को भी स्मरण किया गया।

विद्यालय की प्राचार्या डॉ. श्रीमती राकेश सचदेवा जी ने सभी विशिष्ठ अतिथियों एवं आगन्तुकों का धन्यवाद यापन किया। शान्तिपाठ एवं जलपान के साथ सम्पूर्ण कार्यक्रम सुसम्पन्न हुआ।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 19 मई, 2013 से 25 मई, 2013

तेंतीस वीर्य

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन्, भर्गो यशः ओजो वयो बलम्।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि, तान्यग्निः प्रददातु मे।।

अथर्व 19.37.1

ऋषिः **अथर्वा**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● **(अग्निना)** अग्नि–स्वरूप परमेश्वर से **(दत्तं)** दिया हुआ **(इदं)** यह **(वर्चः)** ब्रह्मवर्चस, **(भर्गः)** तप **(यशः)** यश, **(सहः)** साहस, **(ओजः)** ओज, **(वयः)** आयुष्य [और] **(बलं)** बल **(आगन्)** [मुझे] प्राप्त हो। **(यानि च)** और जो **(त्रयस्त्रिंशत्)** तेंतीस **(वीर्याणि)** वीर्य [हैं], **(तानि)** उन्हें **(अग्निः)** परमेश्वर **(मे)** मुझे **(प्रददातु)** प्रदान करे।

● परमेश्वर सर्वशक्तिमान् हैं, सब गुणों के आगार हैं। इधर मैं अत्यन्त अल्पशक्ति हूँ और अनेक न्यूनताएँ एवं अभाव मेरे अन्दर विद्यमान हैं। पर मैं इनसे निराश नहीं हूँ। परमेश्वर से सम्बन्ध जोड़कर मैं भी शक्तियों और गुणों का पुंज बन सकता है। मेरी कामना है कि मैं वर्चस्वी प्रभु से ब्रह्मवर्चस प्राप्त करूँ, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान बन जाऊँ, जिससे कोई भी ब्रह्म–विरोधी भावनाएँ मुझे पराजित न कर सकें। मैं तपस्वी प्रभु से तपस्या की शिक्षा लूँ, इतना तप करूँ कि मेरे तप से समस्त पाप–वासनाएँ भस्म हो जाएँ। मैं यशस्वी प्रभु को यशः प्राप्ति के लिए अपना आदर्श बनाऊँ। उसके समान मैं भी अनुपम कीर्ति से जगमगाऊँ। मैं साहसी प्रभु से साहस प्राप्त करूँ। साहस ही मनुष्य को जटिल से जटिल कठिनाइयों से पार लगाता है। मैं ओजस्वी प्रभु से ओज ग्रहण करूँ, क्योंकि ओज ही शरीर एवं आत्मा का धन है। मैं आयुष्मान् प्रभु से दीर्घ आयुष्य प्राप्त करूँ, जिससे चिरकाल तक समाज की सेवा कर सकूँ। मैं बलवान प्रभु से शिक्षा लेकर अपने अन्दर मनोबल और दैहिक बल का संचय करूँ, जिससे मानसिक एवं बाह्य शत्रुओं से लोहा ले सकूँ।

ज्योतिर्मय परमात्मा मुझे वे तेंतीस वीर्य प्रदान करें जो मानव की पूर्णता के लिए आवश्यक हैं। ये तेंतीस वीर्य हैं दस इन्द्रिय–बल, चार अहंकार–चतुष्टय के बल, एक आत्मा का बल, पांच प्राणबल, पांच अन्नमयादि कोषों के बल, आठ अणिमादि योगसिद्धियों के बल। मानव–शरीर के अन्दर स्थित ये इन्द्रियादि यदि बलवान् नहीं होते, तो ये मनुष्य को पथभ्रष्ट करने में कारण बनते हैं। निर्बल इन्द्रियाँ अन्तर्मुखता को छोड़कर भोग–विषयों की ओर आकृष्ट होने लगती है। निर्बल आत्मा कामादि रिपुओं के वशीभूत हो जाना है। निर्बल प्राणपान आदि अपनी प्राणन आदि क्रियाओं को साधु प्रकार से न कर सकने के कारण शरीर को रूग्ण एवं क्षीण कर देते हैं। निर्बल अन्नमयादि कोष आत्मोन्नति के सोपान न बनकर आत्मा को गिरानेवाले बन जाते हैं। निर्बल अणिमालघिमा आदि योगसिद्धियाँ परमात्म–साक्षात्कार में सहायक न होकर मनुष्य को सांसारिकता में ही फँसाये रखती हैं। अतः तेज और बल के परम स्रोत अग्नि प्रभु से मैं अपनी सम्पूर्ण विनम्रता के साथ याचना करता हूं कि वे मुझे उक्त तेंतीस प्रकार के बलों से बनाकर पूर्णता प्रदान करें। ❑

वेद मंजरी स

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

घोर घने जंगल में

● महात्मा आनन्द स्वामी

स्वामी जी ने तीसरे दिन की कथा का आरंभ करते हुए मानसिक तप की भगवत्गीता में कहीं परिभाषा बताई और शरीर को सुख देने वाले तप की निन्दा की। फिर शारीरिक तप है क्या? शारीरिक तप है– देव, द्विज, गुरु प्राज्ञ की पूजा, पवित्रा, सरलता, ब्रह्मचर्य ओर अहिंसा। घोर घने जंगल में उस सच्चे साथी को पाने की बात को आगे बढ़ाते हुए स्वामी जी ने 'राम दास' की कथा सुनाई और उसे 'बकरीदास' कहेने वालो से कहा कि तुम्हारे कितने नाम हो सकते हैं सोचो– नौकरी दास, धनदास, मनदास, पत्नीदास, पुत्रदास आदि। कितनों को साथी समझ बैठें। सच्चे साथी को पाने का प्रयत्न करो। उसे पाने के लिए स्वाध्याय, सत्संग, तप के प्रसंग में वाणी के तप की बात स्वामी जी ने आरंभ की– सच बोलो परन्तु मीठा सच। कड़वी बात न कहो। वाणी के वेद, उपनिषद आदि उत्तम शास्त्रों के पढ़ने मं लगाओ–'यह है वाणी का तप।

मानसिक तप की बात करते हुए कहा– मन को प्रत्येक अवस्था में प्रसन्न रखना, शान्त और गंभीर बनाये रखना, बहुत और व्यर्थ की बातें ने करना, इन्द्रियों को वश में रखना, भावना का शुद्ध बनाये रखना यह सब कुछ मानसिक तप है।

दुःख आए भोग लो, उसे पल्ले मत बांधो। 'प्रख्या' 'प्रवृति' और 'स्थिति' योग के इन तीन शब्दों की व्याख्या स्वामी जी ने की।

अब आगे.....

'योगदर्शन' में मन को प्रसन्न रखने का एक बहुत सुन्दर साधन बताया है। मन को प्रसन्न रखने से ही मन निर्मल होता है। प्रसन्नता और निर्मलता दोनों का अर्थ एक ही है। इसलिए 'योगदर्शन' के ऋषि कहते हैं– सुनो! मैं तुम्हें मन की प्रसन्नता और निर्मल बनाने का साधन बताता हूँ–

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाां
सुखदुखपुण्यापुण्यविषयाणां
भावनातश्चित्तप्रसादनम्।

चित्तप्रसादन अर्थात् चित्त को प्रसन्न रखने और निर्मल बनाने का उपाय क्या है?

सबसे पहला यह कि जो लोग सुखी हैं, जिन पर ईश्वर की कृपा है, जो देश,समाज, धन और शासन में आगे बढ़े हैं, उनके साथ मित्रता करो।

आप कहोगे–यह अच्छा साधन है! इसका अर्थ यह है कि जिनके हाथ में शासन है उनकी खुशामद करो। नहीं मेरे भाई! मित्रता का अर्थ चाटुकारिता नहीं। 'योगदर्शन' का ऋषि खुशामद की बात नहीं कहता। केवल मित्रता की, प्यार की बात कहता है। प्रायः हम किसी बड़े व्यक्ति को, धनिक को, अधिक पढ़े–लिखे को और सुखी को देखते हैं तो उसके लिए मित्रता और प्यार की भावना को नहीं जगाते; व्यर्थ में ईर्ष्या और द्वेष की भावना जगा देते हैं। धन किसी दूसरे के पास है, शासन उसके पास है, शक्ति उसके पास है, सौंदर्य उसके पास है और हम अपने यहाँ व्यर्थ में ही आग जला देते हैं और अपने द्वारा जलाई आग में जलना शुरू कर देते हैं। कोई धनी है और कोई शक्तिशाली, कोई वद्वान्, कोई बुद्धिमान् या सुन्दर है तो हम उसकी प्रशंसा नहीं करते, व्यर्थ में निन्दा करते हैं– क्या है जी? पण्डित नेहरू को समझ क्या है? भाग्य की बात है, नहीं तो ऐसे व्यक्ति को पूछता कौन?

अद्भुत तमाशा है! पण्डित जवाहरलाल नेहरू में गुण नहीं तो देश उनका सम्मान क्यों करता है? यदि उनमें विशेषता नहीं तो उनके नेतृत्व में देश कला और कौशल के क्षेत्र में इतनी तेजी से आगे किस प्रकार बढ़ा है? संसार–भर में उनका सम्मान क्यों हुआ? अच्छा मान लो, यह सब–कुछ पण्डित जवाहरलाल नेहरू के भाग्य से हो गया है। परन्तु यह भाग्य किस प्रकार बनता है? जो कर्म हम करते हैं उन्हीं का नाम तो भाग्य है। पण्डित जी का भाग्य यदि अच्छा है तो सीधा अर्थ है कि उन्होंने उत्तम कर्म किये। इन शुभ कर्मों के लिए उनका सम्मान होना चाहिए या उनसे ईर्ष्या? परन्तु ईर्ष्या करने वाला तो यह सब–कुछ नहीं सोचता। वह अपनी जलाई आग में ही जलता रहता है।

इसलिए 'योगदर्शन' का ऋषि कहता है– जो लोग सुखी हैं, आगे बढ़े हुए हैं और उठे हुए हैं उनसे मित्रता करो, ईर्ष्या नहीं। उनके सुख में सुखी बनो, व्यर्थ में अपने लिए चिता मत जलाओ।

और जो लोग दुःखी हैं, अपने किसी बुरे काम का फल भोग रहे हैं, उनसे घृणा न करो। उन्हें चिढ़ाने का प्रयत्न न करो। उन्हें अपने से नीचा समझकर अधिक दुःखी न करो, अपितु उन पर करुणा करो, तरस खाओ। जहाँ तक हो सके उनकी सहायता करो, उनके दुःखों को दूर करने के लिए का प्रयत्न करो। प्रयत्न करो कि उनके आँसू सदा के लिए नहीं तो थोड़ी देर के लिए ही मुस्कराहटों में बदल जायें।

और जो लोग ऐसे हैं, जिन्होंने धर्म के मार्ग को अपनाया है, कर्तव्य–मार्ग को अपनाया है,

पुण्य के मार्ग को अपनाया है, उन्हें देखकर प्रसन्न होओ कि संसार में इस प्रकार के उत्तम पुरुष भी विद्यमान हैं।

और जो लोग धर्म को भूल गए हैं, कर्तव्य को भूल गए हैं, पाप के मार्ग पर चल पड़े हैं, नीचे गिर गए हैं, जिन्हें उठाने और धर्म तथा कर्तव्य के मार्ग पर लाने का तुम्हारा यत्न सफल नहीं हुआ, उनकी उपेक्षा करो। उनसे परे हट जाओ। उनकी ओर से ऐसे रहो जैसे वे तुम्हारे लिए संसार में विद्यमान ही न हों।

यह है चित्त के प्रसादन का उपाय! जो सुखी हैं उनसे मैत्री, जो दुःखी हैं उन पर करुणा, जो पुण्य के मार्ग पर चलते हैं उनके लिए प्रसन्नता, जो पाप के मार्ग पर चलते हैं उनके लिए अपेक्षा– इस प्रकार मनुष्य का चित्त निर्मल हो जाता है।

यह संसार है न? इसमें हर प्रकार के लोग हैं। इस प्रकार का समय भी आता है। प्रायः हम समझते हैं कि जो लोग बुरे हैं, बिगड़े हुए हैं और पाप कर रहे हैं, उन पर क्रोध करना बिल्कुल ठीक है। परन्तु 'योगदर्शन' ऐसा नहीं मानता। वह कहता है, "बिगड़े हुए व्यक्ति पर भी क्रोध नहीं करना।" महात्मा बुद्ध ने शायद इसीलिए कहा–

अवकोधेन जिते कोधं वैरीन अवैरिता जिते।

'क्रोध को अक्रोध से जीत, शत्रुओं को मित्रता से।' यह क्रोध मनुष्य के जीवन को बिगाड़ देता है। एक घर में मैं गया। माँ–बाप ने कहा, "हमारे बच्चे क्रोध बहुत करते हैं। इन्हें कुछ समझाइये परन्तु हमारा नाम न लीजिये, नहीं तो वे हम पर ही क्रोध करेंगे।" मैंने कहा, "अच्छी बात है, समझाऊँगा।" कुछ ही देर पश्चात् दो युवक मेरे पास आए। इधर–उधर की बातों के पश्चात् बोले, "हमारे माता–पिता को क्रोध बहुत आता है स्वामी जी! क्रोध में इन्हें यह नहीं सूझता कि क्या कहना है और क्या नहीं कहना है। आप कुछ ऐसा कर दीजिये कि क्रोध न किया करें।" और तब साथ ही बोले, "उन्हें यह नहीं बताइये कि हमने यह बात कहीं है।"

मैंने हँसते हुए मन–ही–मन में कहा, 'यहाँ तन्द (एक तार) नहीं, तानी (तानाबाना) ही बिगड़ी पड़ी है।'

परन्तु इसका परिणाम क्या था? यह कि उनके घर में कोई शान्ति नहीं थी, चैन नहीं था। सुख के साधन सभी थे, परन्तु सुख नहीं था।

मानव–जीवन को सफल और सुखी बनाना हो तो यह पहला पाठ है जो सीखना चाहिये, 'क्रोध को त्यागे बिना मनुष्य का मन न कभी प्रसन्न होता है न निर्मल।'

युधिष्ठिर और भाई गुरु जी के पास गए तो गुरु महाराज ने पहले दिन का पाठ दिया, "क्रोध मत कर।" सबने पढ़ा, "क्रोध मत कर।" गुरु जी ने लिखाया, और लिखाने के बाद कहा, "अब जाओ, इनको याद करो। कल मैं सूनूँगा।" "क्रोध मत कर।" और लिखाने के बाद कहा, "अब जाओ, इसकी याद करो। कल मैं सूनूँगा।"

दूसरे दिन सब बच्चे गुरु जी के पास पहुँचे तो उन्होंने कहा, "सुनाओ कल का पाठ।"

अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, सबने कल का पाठ सुना दिया, "क्रोध मत कर।" परन्तु युधिष्ठिर ने पाठ नहीं सुनाया।

गुरु जी ने पूछा, "युधिष्ठिर, तुझे पाठ याद नहीं हुआ?"

बालक युधिष्ठिर ने कहा, "नहीं गुरुदेव! अभी तो नहीं हुआ।"

गुरु ने कहा, "कैसा मूर्ख है तू! सबसे बड़ा है, सबसे अयोग्य। जा, कल अवश्य स्मरण करके आना।"

युधिष्ठिर बोला, "प्रयत्न करूँगा गुरुदेव!" दूसरा दिन आया तो युधिष्ठिर ने फिर कहा, "मुझे यह पाठ याद नहीं हुआ।"

गुरु जी ने तड़पकर कहा, "अरे तू मनुष्य है या पशु? तीन शब्दों का पाठ तुझे कण्ठस्थ नहीं हुआ?" और एक चपत मार दी उसके मुँह पर।

तीसरे दिन युधिष्ठिर के सामने आते ही गुरु जी ने पूछा, "क्यों, हो गया याद?"

युधिष्ठिर ने सिर झुकाकर कहा, "नहीं गुरु जी! अब भी कण्ठस्थ नहीं हुआ।"

गुरु जी ने तीन–बार चपत उसके मुँह पर लगा दिये और गर्जकर बोले, "प्रयत्न नहीं करता। कल यदि पाठ याद नहीं हुआ तो चमड़ी उधेड़ दूँगा।"

युधिष्ठिर ने पहले की भाँति सिर झुकाकर कहा, "मैं प्रयत्न करूँगा। और उस दिन वह दुर्योधन आदि के पास गया। देखा कि उनकी गालियाँ सुनकर, और ताने सुनकर क्रोध आता है या नहीं। यह भी देखा कि कुछ–कुछ आता है।

चौथे दिन गुरु जी ने फिर पूछा, "युधिष्ठिर! पाठ याद हुआ या नहीं?"

युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ दिये, सिर झुका दिया, धीरे से बोला, "नहीं गुरु जी, अभी पूर्ण रूप से याद नहीं हुआ। कुछ–कुछ याद हुआ है।

गुरु ने चपत के बाद चपत मारने शुरु कर दिये। युधिष्ठिर खड़ा मुस्कराता रहा। गुरु जी हाँफने लगे। थककर रुके तो वह अब भी मुस्करा रहा था। आश्चर्य से बोले, "अरे, तू अब भी मुस्करा रहा है?"

युधिष्ठिर ने कहा, "आपने यही तो सिखाया था गुरु जी! कि क्रोध मत कर। अब मैं कह सकता हूँ कि आपका सिखाया हुआ पाठ मुझे याद हो गया है।"

गुरु ने आगे बढ़कर उसे छाती से लगा लिया; बोले, "अब समझा हूँ; तुम इस पाठ को सदा से जानते थे। मैं ही भूल गया था। तुम पास हो गये हो, मैं फेल हो गया हूँ।"

'क्रोध मत कर' यह पहली शिक्षा है जो हमको दी जाती थी। इससे आवश्यक शिक्षा शायद कोई नहीं है, क्योंकि यह क्रोध बहुत बड़ा चाण्डाल है।

गंगा के किनारे एक साधु अपनी कुटिया बनाकर रहते थे। एक दिन उन्होंने कपड़े धोये। धूप अच्छी थी; वहीं गंगा के किनारे रेत पर सूखने के लिए डाल दिये। तब स्वयं नहाये। नहा–धोकर अपनी कुटिया में जाकर बैठ गये। तभी एक चाण्डाल आया वहाँ। उसे भी गर्मी लग रही थी। उसने सोचा, गंगा जी के शीतल जल में स्नान कर लूँ। स्नान करने के पश्चात् बाहर निकला तो सोचा– कपड़े मैले हो गये हैं, इन्हें भी धो लूँ। बस, कपड़े धोने लगा। कपड़े धोने की आवाज कुटिया में पहुंची तो साधु ने सोचा कि कपड़े कौन धोता है? बाहर आकर देखा तो एक चाण्डाल। यह भी देखा कि उसके कपड़ों से उड़ने वाले छींटे साधु के सूखते हुए कपड़ों पर गिर रहे हैं। बस, फिर क्या था! चढ़ गया क्रोध! दौड़ते हुए वह साधु चाण्डाल के पास पहुँचा और गालियाँ देते हुए बोला, "तू अन्धा है? चाण्डाल होकर अपने कपड़े धोता है? तेरे अपवित्र छीटों ने मेरे कपड़ों को अपवित्र कर दिया।" आगे बढ़कर दो, तीन, चार, चपत उन्होंने चाण्डाल के मुँह पर लगा दिये। चाण्डाल हाथ जोड़कर खड़ा रहा। साधु महाराज चिल्लकार बोले, "फिर मत आना इस स्थान पर!"

साधु महाराज थे बूढ़े और दुर्बल, चाण्डाल था हृष्ट–पुष्ट। साधु बाबा थक गये, हाँफने लगे; गर्मी जो लगी तो गंगा में पहुँचे, नहाने लगे।

चाण्डाल को भी मार खाकर पसीना आ गया था। वह भी गंगा में कूद पड़ा। साधु बाबा ने चिल्लाकर कहा, "अभी तो पसीने से तर हो रहा है, एकदम गंगा में कूद पड़ा? सर्द–गर्म हो गया तो मरेगा। और फिर तू तो नहा चुका था, अब क्यों नहाता है?"

चाण्डाल बोला, "महाराज, आप भी तो नहा चुके थे। आप क्यों नहाते हैं?"

साधु ने कहा, "मुझे चाण्डाल ने छू लिया था इसलिए नहाता हूँ।"

चाण्डाल बोला, "और मुझे महाचाण्डाल ने, आपके क्रोध ने छू लिया था इसलिए नहाता हूँ।"

वस्तुतः यह क्रोध महाचाण्डाल है। सब–कुछ बिगाड़ देता है। जहाँ उत्पन्न हो जाये वहाँ सर्वनाश कर देता है, कुछ भी शेष नहीं रहने देता। चित्त को प्रसन्न, निर्मल बनाने का पहला साधन यह है कि क्रोध को अपने निकट मत आने दो।

फिर **'सौम्यत्वम्'**– शान्त, गम्भीर बनकर रहो। उतावलेपन को, चंचलता को, प्रत्येक बात शीघ्रता से करने के स्वभाव को अपने पास आने ने दो।

तीन वस्तुएँ हैं जो मन को बहुत खराब करती है– 'हरी' (Hurry), 'वरी' (Worry), और 'करी' (Curry); तीनों अंग्रेजी के शब्द हैं;

'हरी' तो जैसे इस संसार के लिए एक रोग बना जाता है। अच्छे–भले लोग पैदल चलते थे, दौड़ते भी थे, उनका स्वास्थ्य भी उत्तम रहता था। दिल और दिमाग भी अच्छे रहते थे। फिर बैलगाड़ियाँ शुरु हुईं, तब घोड़ागाड़ियाँ, फिर रेलगाड़ियाँ चलीं। परन्तु जल्दी का रोग तो समाप्त नहीं हुआ। इसलिए मोटरें बनी, बस और लारियाँ बनीं, वायुयान बने, फिर जेट बने और अब रॉकेट बन रहे हैं। प्रत्येक स्थान पर शीघ्रता से पहुँचने का एक रोग संसार को लग गया है। अच्छी बात है। शीघ्रता करना चाहते हो, जल्दी पहुंचना चाहते हो तो करो जल्दी, परन्तु ओ भोले यात्री! यह भी तो सोचो कि तुम्हें पहुँचना कहाँ है?

एक अमरीकी सज्जन शिकागो में रहते थे। शिकागो में शीघ्रता की बीमारी बहुत है। सड़कों पर मोटरें, बसें, ट्रामें दौड़ती हैं। इनके अतिरिक्त शहर में रेलगाड़ियाँ भी चलती हैं। नगर में ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना हो तो लोग रेलगाड़ियों में जाते हैं; परन्तु ये गाड़ियाँ इतनी तेज नहीं चल पातीं जितनी तेजी से लोग जाना चाहते हैं; इसलिए पृथिवी के नीचे भी रेलगाड़ियाँ चलती हैं। ये गाड़ियाँ दौड़ती हैं काफी तेज। परन्तु इनमें भीड़ भी हो जाती है। इसलिए पृथिवी के ऊपर तथा मकानों और छतों के ऊपर जानेवाली गाड़ियाँ भी चलती हैं। पृथ्वी पर गाड़ियाँ, पृथ्वी के अन्दर गाड़ियाँ, मकानों की छतों पर गाड़ियाँ। तनिक सोचकर देखिये कि उस नगर में रहने–वालों की क्या अवस्था होती होगी? परन्तु यह मायावाद का युग है। प्रत्येक काम शीघ्रता से करने का रोग लोगों में जाग उठा है। इस बीमारी का एक रूप है शिकागो का यह नगर। वहाँ एक अमरीकी सज्जन रहते थे। एक बार उनके एक चीनी मित्र उन्हें मिलने के लिए शिकागो पहुँचे। अमरीकी सज्जन उन्हें शिकागो दिखलाने के लिए अपने साथ ले गये। तब बोले, "यह तो ठीक नहीं। आओ भाई! यहाँ से उतरो, हम भूमि के नीचे चलनेवाली गाड़ी से चलेंगे।" चीनी मित्र ने पूछा, "यहाँ क्या बुराई है?" अमरीकी सज्जन बोले, "बातें न करो, समय व्यतीत हुआ जाता है, हमें ट्यूब रेलवे को पकड़ना है।" इसके बाद दोनों भूमि के नीचे गये। गाड़ी जाने वाली थी, उसमें बैठ गये। एक और स्टेशन पर पहुँचकर उतर गये। चीनी सज्जन ने कहा, "अब क्या होगा?" अमरीकी सज्जन बोले, "हमें दूसरी ओर जाना है। भूमि के नीचे चलने वाली गाड़ी दस मिनट पश्चात् आयेगी। इसलिए आओ, पृथिवी से ऊपर चलने वाली गाड़ी से चलें।" बेचारे चीनी सज्जन इनके पीछे भागे। एक सीढ़ी चढ़कर नीचे से ऊपर आये। फिर दूसरी सीढ़ी से पृथिवी से ऊपर चलने वाली रेलगाड़ी के प्लेटफार्म पर पहुँचे। वह हवाई गाड़ी चलनेवाली थी। उसमें बैठकर एक और स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ से बस में बैठकर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पहुँचना था। हाँफते हुए चीनी सज्जन ने पूछा, "अब तो पहुँच गये? अमरीकी सज्जन ने कहा कि, "हाँ, और देखो, हम पन्द्रह मिनट पश्चात् पहुँचते। हमने पन्द्रह मिनट बचा लिये है।" चीनी सज्जन बोले, "यह ठीक है कि हमने पन्द्रह मिनट बचा लिये परन्तु पन्द्रह मिनट में हम करेंगे क्या? इनको बचा लेने का क्या लाभ हुआ?" अमरीकी सजजन ने हाथ मलते हुए कहा, "लाभ? लाभ तो मैं नहीं जानता, मेरे लिए यही बहुत है कि हमने दौड़–भागकर पन्द्रह मिनट बचा लिये हैं।

– क्रमशः –

कर्म करने के अधिकार का हमें दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

● **हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'**

मनुष्य को इस संसार में लाना तो कठिन है ही, पर उसे भला आदमी बनाना और भी कठिन है। वेद कहता है– **"उतिष्ठ स्वध्वरावानो देव्याधिया। दृशेचभाषा वृहता सुशक्वनिराग्नेयाहि सुशस्तिभिः।।** (यजु.।। 41.) विद्वान लोगों को चाहिये कि शुद्ध विद्या और बुद्धि के दानसे मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करें क्योंकि अच्छी शिक्षा के बिना मनुष्यों के लिए और कोई भी आश्रय नहीं है। इस लिये सबको उचित है कि आलस्य और कपट आदि कर्मों को छोड़ के विद्या के प्रचार के लिये सदा प्रयत्न किया करें।,

'सत्यार्थ प्रकाश' के शिक्षा विषय में ऋषि दयानन्द लिखे हैं कि –

'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेदः।। यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान होता है। वह कुल धन्य, वह सन्तान बड़ा भाग्यवान, जिसके माता और पिता धर्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं।

नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने एक बार कहा था कि ''यदि कोई पढ़ा लिखा व्यक्ति चरित्रवान नहीं है तो क्या उसे पण्डित कहूँगा? कभी नहीं। यदि अनपढ़ व्यक्ति ईमानदारी से काम करता है, ईश्वर में विश्वास रखता है और उससे प्रेम करता है तो मैं उसे महापण्डित मानने को तैयार हूँ।''

मातृशक्ति के रूप में कर्म का सर्वोच्च रुप ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जी में देखने को मिलता है। उस समय भारत अग्रेज़ों के अधीन था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को योग्यता के कारण नौकरी मिल गई। माताजी की आज्ञा लेकर नौकरी पर चले गये। एक दिन उनको माता जी का पत्र मिला कि छोटे भाई का विवाह है, तत्काल गाँव आ जाओ। पत्र मिलते ही मालिक से छुट्टी मांगी, पर छुट्टी जब नहीं मिली तब नौकरी से त्याग पत्र दे दिया। गाँव जाने में नदी पार करनी थी, कोई नाव वाला नदी पार जाने को तैयार नहीं हुआ तो वे स्वयं उफनती हुई नदी में कूद पड़े और तैरकर पार हुए और अपने गांव पहुँचकर माता के चरणों में माथा रख आशीर्वाद प्राप्त किया। तभी तो कहा गया है **"आचारहीनं न पुनन्ति वेदा।"** अर्थात् चाहे एक व्यक्ति सारे वेदों का ज्ञाता ही हो यदि उसका आचरण अच्छा नहीं है तो उसके जीवन में पवित्रता नहीं आ सकती।'

माता का दर्जा पुत्र के प्रति उसके प्यार का कोई माप तौल नहीं कर सकता। एक दिन स्वामी विवेकानन्द–सभा में माता पूजनीय और उसकी महत्ता का वर्णन कर रहे थे कि इतने में किसी ने कहा कि माता को महान् क्यों समझा जाता है? उन्होंने कहा कि जिस माता ने दशवें मास तक बच्चे को धारण कर जन्म दिया यह साधारण बात नहीं है। उस व्यक्ति ने कहा कि इसमें कौन सी बड़ी बात है? तब विवेकानन्द जी बोले कि तुम केवल डेड़ किलो का पत्थर अपने पेट पर बाँधकर केवल नौ घण्टे के लिए अपना काम करके हमें दिखलाओ। वही हुआ उसके पेट पर पत्थर बांध दिया गया, नौ घन्टा तो दूर की बात रही, दो घन्टा भी नहीं रख पाया, तब उसे भी बोध हो गया कि माँ कितनी महान् है। वेद का आदेश है:

'अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।। (अथर्व.3,30,2)'

अर्थ–पुत्र पिता का अनुकरण करने वाला हो और माता के साथ एक मन वाला हो । पत्नी अपने पति के लिये मीठी और शान्ति से भरी हुई वाणी बोले।

मनु महराज ने लिखा है। – 'माता पिता का स्थान बहुत ऊँचा है। जो बालक अपने माता पिता और गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं, वे सदा यशस्वी, विद्वान और श्रेष्ठ बनते हैं।

मानव जीवन का प्रारम्भ ही नारी गोद से हुआ है, इसलिये कहा गया है कि अपने कर्त्तव्य की गुरुता के भार को सहर्ष वहन करती हुई माता मानव को संसार में व्यवहार के लिये सक्षम बनाती है। वह प्रेरणा है जो मुर्दे में जान डाल देती है, इसलिये यह प्रसिद्ध है कि प्रत्येक पुरुष के सफलता के पीछे नारी का हाथ रहा और रहता है। वह पूजनीय, वन्दनीय है जिसे देवता भी नमस्कार करते हैं। जैसे मनु महाराज ने लिखा है:–

"यंत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः"। एक समय था जब नारी ही समस्त समाज की "मेरूदण्ड" थी। उत्तम योग्य व सुसंस्कृत सन्तान मातृत्व की अमृतमय गोद में पलकर बनती थी। छत्रपति शिवा जी को वीरत्व की प्राप्ति उनकी माता ''जीजाबाई'' से प्राप्त हुआ था, और वीर हकीकतराय को धर्म की शिक्षा उनकी माता कौराँ ने दी थी– **'माता निर्माता भवति एवं नास्ति मातृसमोगुण'** बच्चों के प्रथम पाठशाला 'मां' की गोद है। शिक्षित मातायें, मात्र पांच वर्षो में सच्चे मानव तैयार कर देती हैं। वह माता देवी की मूर्ति कहलाती है, जिसमें लज्जा व शालीनता हो। अतः जो अपने गृहस्थ को स्वर्गसम बनाती है, जो सहनशील और जो अपने स्वामी की अनुगामिनी होती है , वही पतिव्रता कहलाती है।

परमात्मा ने वेद द्वारा आदेश दिया है **"मनुर्भव"** अर्थात मानव बनो। मानव कैसे बनें? हाथ, पाँव, आँख, कान सब तो हैं फिर कैसे मानव बनें? परमात्मा का उपदेश है, **आत्मवत् सर्वभूतेषु** ! समस्त आत्माओं को अपने आत्मा के समान जानना। धरती पर बहुत से लोग हैं जो अन्य आत्माओं को अपनी आत्मा के समान नहीं मानते, इसलिए परमात्मा ने उपदेश दिया मानव बनो।

यह शिक्षा मात्र वेद में है। दुनिया के किसी मजहबी ग्रन्थ में यह मिलना सम्भव ही नहीं। कारण मजहबी ग्रन्थ मात्र वर्ग विशेष को, सम्प्रदाय विशेष को उपदेश दिया करते हैं मानवमात्र के लिये नहीं। इसलिये कुरान का अल्लाह सिर्फ मुसलमान बनने को कहता है। यहाँ तक कि इस्लाम को छोड़ कोई धर्म नहीं यह बताता है।

धन्यवाद दीजिये आर्य समाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द को कि जिन्होंने मानव मात्र को चिल्ला चिल्लाकर कहा कि भाईयो हमें मानव बनना है, इस हिन्दू मुस्लिम के चक्कर को छोड़ो, मानव बन जाओ। मानव बनने से सभी शंकाओं का समाधान है। मानव उसी को कहना जो मननशील होकर अन्यों के सुख दुःख लाभ व हानि को समझे। अन्यायकारी राजा बलवान से न डरे और निर्धन धर्मात्मा से डरे, उनके साथ प्रियाचरण करे। चाहे वह अनाथ निर्बल ही क्यों न हो। किन्तु धरती पर जितने मजहबी ग्रन्थ हैं वह मानव को मानव बनने के बजाय कहीं मुसलमान तो कहीं ईसाई, जैनी बोधिष्ट बनने की बात कहते हैं।

आज समग्र दुनिया में देखा जा रहा है अपने खून को खून और दूसरे के खून को पानी समझने लगे हैं। आज दुनियाँ भर में इस्लामी जिहाद छिड़ी हुई है।

कुरान में अल्लाह ने यहाँ तक कहा कि जो इमान नहीं लाते कुरान पर, रसूल पर जिब्राईल पर वह सब के सब काफिर हैं।

जो अल्लाह को न माने अल्लाह का दुश्मन है, फरिश्तों का दुश्मन है, जिबरील, मीकाईल का दुश्मन है। वह सब काफिर हैं इन्हें मौत के घाट उतारो।

आज धरती पर जितने भी काण्ड इस्लाम के मानने वालों द्वारा हो रहे हैं, वह यही कुरानी शिक्षा ही है जिस पर इस्लाम के मानने वाले अमल कर रहे हैं। इन सबका प्रेरणा स्रोत कुरान ही है। तथा मजहबी ग्रन्थ हैं।

यदि धार्मिक शिक्षा सही है तो दानव देवता बन जाता है और यदि उसका सही इस्तेमाल नहीं किया गया तो मानव हिंसक बन जाता है। कुरान में खुदा की एक वाणी है–'सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते है, जो परवर दिगार अर्थात् पालनहार है सब संसार का। क्षमा करने वाला दयालु है।

यदि मुसलमान निर्दयी नहीं है, तो दयालु भी नहीं है, यदि दयालु होते कुरान के आदेश का अवश्य पालन करते। ऋषि दयानन्द ने इसकी समीक्षा इस प्रकार की है। –यदि कुरान का खुदा संसार का पालन करने वाला होता और यदि सब पर क्षमा दया करता, तो पशु आदि को मुसलमानों के हाथ से मरवाने का हुक्म न देता। जो क्षमा करने वाला है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि काफिरों को कत्ल करो अर्थात् जो कुरान और पैगम्बर को नहीं मानते वे काफिर हैं, ऐसा क्यों कहता? अतः ऐसी शिक्षा से आतंकवाद को काफी बढ़वा मिल रहा है क्योंकि कुरान का खुदा तो उन्हें क्षमा कर ही देगा।

श्री जगदीश बत्रा लायलपुरी ने साप्ताहिक **"सत्य चक्र"** में *'निष्काम कर्म आसान नहीं'*, शीर्षक लेख में लिखा है कि – "कर्म का अधिकार कई बार कठिन परीक्षा लेता है। जब भारत मुगलों के अधीन था तब नवाब सरहिंद ने गुरु गोविन्दसिंह के दो छोटे पुत्रों को कैद कर लिया। उसने गुरुपुत्रों से कहा कि तुम मुसलमान हो जाओ। मैं तुम्हारा विवाह राजकुमारियों से करा दूँगा और तुम सुख पावोगे। लेकिन वे वीर बालक अपने धर्म पर अडिग रहे। नवाब ने दुर्ग की दीवार गिरा दी और दोनों बालकों को दीवार में चिनवा दिया। आज इतिहास उन मुगल शासकों को धर्मान्ध तथा वीर बालकों को बलिदानी के रुप में याद कर रहा है।"

ईसा को उनके विरोधी लोगों ने

शेष पृष्ठ 6 पर ☞

विवेक, वैराग्य और अभ्यास द्वारा पाप-वासनाओं पर नियन्त्रण

● रमेश चन्द्र पाहूजा

शहर के कोलाहल से बहुत दूर, आइये हम शतपथ ब्राह्मण के रचयिता महर्षि याज्ञवलक्य जी के आश्रम चलते हैं। गगन-चुम्बी पर्वत-मालाओं की गोद में स्थित, ऊँचे-ऊँचे पेड़ों से घिरा हुआ, यह आश्रम बहुत ही भव्य और रमणीक लग रहा है। कोयल की कू-कू, चिड़ियों की चीं-चीं और अन्य पक्षियों के गीतों ने जैसे एक सरगम छेड़ दी हो। अभी-अभी महर्षि ने अपने शिष्यों के साथ अग्निहोत्र सम्पन्न किया है। घृत और सामग्री की सुगन्ध सब ओर फैली हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि धरती पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है।

पूर्व दिशा से सूर्य देवता भी धीरे-धीरे आकाश में ऊपर की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े हैं। पेड़ों की छाया नज़र आनी आरम्भ हो गई है। ऋषि अपने आसन पर विराजमान हो गये हैं। और सब ब्रह्मचारी उनके सम्मुख शान्त-स्वभाव में बैठ गये हैं। इतने में एक शिष्य ने छाया के विषय में चर्चा छेड़ दी।

शिष्य : हे आचार्य देव! क्या पुरुष कभी अपनी छाया से मुक्त हो सकता है?

ऋषि : यह कभी सम्भव नहीं! जब तक देह है तब तक छाया उसका पीछा करती रहती है।

शिष्य : आचार्यपाद! छाया की उत्पत्ति का क्या कारण है?

ऋषि : प्रकाश में अवरोध होने के कारण ही छाया पैदा होती है। सूर्य की किरणों का रोध होते ही छाया हो जाती है। प्रातः और सायं हमारा शरीर अधिक किरणों को रोकता है, छाया लम्बी होती है। मध्याह्न में सूर्य सिर के ऊपर आ जाता है तो हमारा सिर अधिक किरणों को रोक नहीं पाता तब छाया छोटी हो जाती है और कभी पैरों के नीचे छिपे रूप में चली जाती है। महर्षि याज्ञवलक्य जी का आगे कथन है-

छाययेव वा अयं पुरुषः पाप्मनाऽनुषक्तः

यह पुरुष छाया के समान, पाप वा. सनाओं से जुड़ा हुआ है। जैसे मनुष्य अपनी छाया से मुक्त नहीं हो सकता उसी प्रकार से मनुष्य पाप-वासनाओं से मुक्त नहीं हो सकता। ज्ञान के प्रकाश का रोध हुआ नहीं कि पाप छाया के समान बढ़ जाता है। तीव्र ज्ञान का प्रकाश होने पर पाप-वासना सूक्ष्म हो छाया के समान अन्तर मन में छिप जाते हैं। अन्तः कारण में न जाने कितने जन्मों के भोग-संस्कार भरे पड़े हैं। इसी तथ्य पर और प्रकाश डालते हुए महर्षि फिर कहते हैं-

अन्तरिक्षं वा अनु रक्षश्चरत्यमूलम्

जीवन-रूपी आकाश में, नीच कर्मों में प्रवृत्त कराने वाले राक्षस-भाव चारों ओर घूम रहे हैं। इन नीच भावों की कोई जड़ नहीं जिसको तुम काट सको और निश्चिंत होकर संसार में विहार कर सको। महामुनि वेदव्यास जी भी इसी कथन की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि मनुष्य के मन में अनादिकाल से नाना प्रकार के क्लेश देने वाली वासनाओं का जाल बिछा हुआ है। जब वासनाओं का विषय उपस्थित होता है तो झट प्रकट हो जाती हैं। उन वासनाओं के सूत्र इतने सूक्ष्म होते हैं कि दूसरे जनों की बात छोड़ो स्वयं अपने-आप भी मनुष्य नहीं जान पाता कि मेरे मन में कैसी-कैसी बुरी वासनायें छुपी हुई हैं। पाप के कारण भूत भाव हमारे अन्तः कारण में छिपे रहते हैं। उनका दग्धबीज हो जाना आसान नहीं।

इसी संदर्भ में महर्षि याज्ञवल्क्य जी अपने शिष्यों को एक सत्य कथा सुनाते हैं। महामुनि वेदव्यास के पिता का नाम महर्षि पराशर था। गुरुचरणों में बैठकर पराशर ने दीर्घकाल तक वेदों का पवित्र ज्ञान पाया था। इसके पश्चात वह तप करने में रत हो गये। पराशर के तप, त्याग, ब्रह्मचर्य और संयम का यश सूर्य प्रकाश के समान धरती पर फैला गया। सब लोगों ने समझा कि उन्होंने पाप भावों को दग्ध कर डाला है। रूप-यौवन सम्पन्न सुन्दरियाँ ऋषि के लिए केवल पञ्चभूतों का विकार मात्र हैं। सोना, चाँदी, हीरे, मोती आदि उनके लिए मिट्टी के समान हैं। यमुना के एकान्त शान्त किनारे पर महर्षि की साधना कुटि थी। मात्र कोपीन के उनके पास अन्य कोई परिग्रह न था। एक दिन कारणवश उन्हें यमुना पर जाना पड़ गया। तट पर एक अत्यन्त सुन्दर बाला नौका लिए खड़ी थी। वह दाशराज की कन्या थी और धर्मार्थ नौका चलाती थी। कन्या का नाम सत्यवती था। उसकी प्रार्थना पर ऋषिवर नाव में बैठ गये। अकेली सुन्दर कन्या को देखकर ऋषि के मन में विकार आ गया। रूप सौन्दर्य को देखकर पराशर के अन्दर छिपी पाप वासना सायंकालीन छाया के समान बढ़ती चली गई। विवेक का सूर्य अस्त हो गया। वह अपने को रोक न सके। उस कन्या के कोख से व्यास ने कानीन पुत्र के रूप में जन्म लिया। महर्षि पराशर का मन क्यों विचलित हुआ। क्योंकि उहें अपने तप, त्याग, ब्रह्मचर्य और संयम पर मिथ्या अहंकार हो गया। वह भूल गये कि पाप-वासनाओं का दग्ध-बीज करना कोई आसान काम नहीं जो भी अहंकार करता है उसका पतन अवश्यम्भावी है। इसलिए कहा गया है- Every pride hath a fall. उन्होंने ब्रह्मचर्य के नियमों का उल्लंघन किया और एक रूप-यौवन सम्पन्ना सुन्दरी के साथ अकेले में नाव में बैठ गये। वह भूल गये कि जब भी वासनाओं का विषय प्रकट होता है तो वह बलवती हो जाती हैं।

यद्यपि तपस्वी महर्षि पराशर एक बार और केवल एक बार अपने जीवन-काल में चूक गये परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उस समय या उसके उपरान्त कोई पूर्ण योगी नहीं हुए। महर्षि दयानन्द सरस्वती तो इसी युग के ही महापुरुष हैं। उनके निर्वाण पर ऋषि-भक्त तो आँसू बहा ही रहे थे अपितु उनके विरोधी भी रो रहे थे। जब एक विरोधी से उसके रोने का कारण पूछा तो उसने कहा- इस संसार में कई ऋषि, महर्षि, योगी आदि हुए परन्तु प्रायः उनके जीवन में कहीं न कहीं कोई न कोई प्रश्न-चिन्ह लग ही गया। ऋषिवर दयानन्द ही उन महान विभूतियों में से एक हैं जिनके जीवन में कोई दाग न था। स्वामी जी एकान्त में अपनी कुटिया में प्रभु का ध्यान कर रहे थे। उनको पतित करने के लिए उनके विरोधियों ने एक षडयन्त्र रचा और एक वैश्या को उनकी तपस्या भंग करने के लिए भेज दिया। जब स्वामी जी की आँख खुली तो उस वैश्या को सामने पाया। दिल की गहराईयों से 'माँ' शब्द निकला। हे माँ, आपने यहाँ आने का कष्ट क्यों किया? माँ शब्द ने उस वैश्या पर जादू सा असर किया और वह उनके पाँव पर गिर फूट-फूट कर रोने लगी, क्षमा याचना माँगने लगी। ऐसे थे अखण्ड ब्रह्मचारी, महान तपस्वी, प्रभु-भक्त ऋषिवर दयानन्द सरस्वती।

व्रती लक्ष्मण भी कितने उच्च कोटि के तपस्वी थे। वह चौदह वर्ष तक अपने बड़े भाई श्री रामचन्द जी व उनकी धर्मपत्नी सीता के साथ वनों में रहे। उन्होंने अपनी भाभी को सदैव अपनी माँ तुल्य ही समझा। कभी नज़र उठाकर भी उनके चेहरे को भरपूर दृष्टि से नहीं देखा। इसीलिए जब श्री राम ने सीता जी के गले के आभूषण पहचानने के लिए लक्ष्मण से कहा तो उसने उत्तर दिया कि मैंने तो भाभी के चेहरे की ओर कभी देखा ही नहीं। इसीलिए गले के आभूषण कैसे पहचान सकता हूँ। मैं तो उनके पाँव के आभूषण ही पहचान सकता हूँ क्योंकि प्रतिदिन प्रातः मैं उनकी चरण-वन्दना किया करता था। कितनी उच्च कोटि की तपस्या थी, आत्म-संयम था लक्ष्मण का?

परन्तु चंचल मन का क्या भरोसा क्योंकि अन्तः करण में छिपी हुई पाप-वासनायें कभी दग्ध-बीज नहीं होती।

महर्षि वेद-व्यास जी एक चिन्तन उठाते हैं- इस चंचल मन की, चट्टानों की तरह दिखने वाली पाँच प्रकार की अनगिनत वृत्तियों को रोकने का कोई उपाय है? मनुष्य के सामने कोई बाधा आये, समस्या या कठिनाई आये और उसका कोई उपाय न हो, यह कैसे हो सकता है? वह कौन सा उपाय है? महर्षि पतञ्जलि बताते हैं कि- **अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः** अर्थात् अभ्यास और वैराग्य द्वारा मन की पाँचों प्रकार की वृत्तियों को सर्वथा रोका जा सकता है। वैराग्य की जन्नी विवेक ही है। इसलिए विवेक, वैराग्य और अभ्यास द्वारा ही हम मन पर काबू पा सकते हैं। मन किस-किस प्रकार से चल सकता है? इस सम्बन्ध में महर्षि वेद व्यास जी लिखते हैं- **चित्तनदी नामो भयतो वाहिनी वहति कल्याणाय वहति पापाय च।** अथ. र्त् मन ऐसी नदी है जो निरन्तर बह रही है। मनुष्य अपनी बुद्धि का सदुपयोग करते हुए मन को कल्याण की ओर बहा सकता है और बुद्धि का दुरुपयोग कर पाप की ओर भी बहा सकता है। यानि श्रेय मार्ग पर भी चल सकता है और प्रेय मार्ग पर भी। जब मन-रूपी नदी श्रेय मार्ग की ओर मुक्ति प्राप्त करने के लिए बहती है तो वह विवेक से ओत-प्रोत होती हैं शुद्ध निर्मल और पवित्र। इसके बहाव में कोई काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष, हिंसा, झूठ, चोरी आदि जैसे झाड़-झंकाड़ नहीं होते। मन का यह बहाव बिना किसी बाधा के निरन्तर बहते हुए परमानन्द में जा मिलता है। प्रेम मार्ग के अन्तर्गत मन रूपी नदी अज्ञानता से ओत-प्रोत होने के कारण संसार रूपी भव सागर को प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के रंग-बिरंगे रूपों में बहती हुई कई प्रकार के रसपान करती हुई हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, परिग्रह आदि को साथ लेकर बढ़ती जाती है। मन-रूपी नदी का यह बहाव पाप रूपी महासमुद्र में जा गिरता है।

ऋषि-मुनियों ने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए सभी उपाय हमारे सामने खोल कर रख दिये हैं। जो व्यक्ति विवेक, वैराग्य और अभ्यास का आश्रय लेता है, वह जीवन के अन्तिम लक्ष्य परमानन्द को प्राप्त कर लेता है। आईये अब विवेक पर कुछ चिन्तन-मन्थन करते हैं।

विवेक

विवेक का अर्थ है यथार्थ ज्ञान

न्याय दर्शन के भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन 'विवेक' की परिभाषा इस प्रकार से करते हैं- **तस्मिन तदिति ज्ञानं** अर्थात् जैसे को तैसा बताने वाला ज्ञान विवेक कहलाता है। वास्तव में विवेक हंस पक्षी की तरह कार्य करता है ऐसा कहा जाता है कि यदि हंस पक्षी के सम्मुख जल मिला दूध रख दिया जाये तो वह दूध तो पी लेता है और जल को छोड़ देता है। यानि दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है। महर्षि

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

यज्ञ-जीवन का आधार

● के.एल. खुराना

यज्ञ एक पवित्र एवं योजनाबद्ध भावना से जीवन जीने की राह है। हवन अथवा अग्निहोत्र इसका प्रतीक रूप प्रदर्शन या उदाहरण है। यज्ञ का **शाब्दिक अर्थ** है देवपूजा, संगतिकरण और दान। जब किसी कार्य, योजना, व्यवहार, दर्शन या दायित्व में तीनों तत्त्व समाहित हो जाते हैं, तो वह यज्ञ बन जाता है।

महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में 'देव' की इस प्रकार व्याख्या की है–

"(देवो दानात्) अपनी वस्तु दूसरे को देने से दानी, (दीपनाद्वा) प्रकाश करने से सूर्यादि लोक, (द्योतनाद्वा) पालन करने और सत्योदेश आदि करने से माता, पिता, आचार्य और अतिथि देव कहलाते हैं। (द्यु स्थाने) सूर्य की किरणों का आधार, जो प्रकाशकों का प्रकाशक ईश्वर है उसे भी देव समझना चाहिए।

पूजा से आशय व्यक्ति या वस्तु का सत्कार, प्राणिमात्र के लिए सदुपयोग एवं धन्यवाद भाव पूजा कहलाता है। इससे स्पष्ट है कि देव तीन प्रकार के हैं–

1. जड़देव– सूर्य, पृथिवी, जल, वनस्पति आदि।

2. चेतनदेव– माता, पिता, आचार्य एवं अतिथि आदि।

3. उक्त दोनों प्रकार के देवों का आधार, प्रकाशकों का प्रकाशक सर्वमंगलमय महादेव परमेश्वर।

जीवन व्यवहार, में कार्यशैली में लोकाचार में, व्यक्ति में दान की प्रवृति, त्यागभाव से भोग, ज्ञान व प्रकाश देने व पालन संरक्षण सेवा की भावना को यज्ञ कहा जा सकता है। अग्निहोत्र, हवन, यज्ञ का साकार प्रतीक एवं क्रियमाण प्रदर्शन व उदाहरण है। अग्निहोत्र द्वारा 'मैं' एवं 'ममत्व' की भावना का लोकहित में अर्पण करना या त्याग भाव का यज्ञ का साकार रूप है।

अग्निहोत्र अथवा हवन में मन्त्रपाठ के साथ अग्निदेव को समिधा, घृत, हवन सामग्री का अर्पण करने से उत्पन्न सुगन्धित वायु आदि पर 'होता' (हवन करने वाला) का अधिकार नहीं रहता। यह विश्वजनीन सम्पति बन जाती है उसी विश्व का एक श्रद्धावान सदस्य 'होता' स्वयं भी है।

हर हवि या आहुति के साथ 'होता' परमपिता परमात्मा को साक्षी करके घोषणा करता है **'इदन्न मम'** अर्थात् इन भौतिक पदार्थो पर मेरा आधिपत्य नहीं रहा। ये समस्त अमृतरूप/सुगन्धित पदार्थ विश्व का कल्याण करें। ये सुगन्धित वायु आकाश में जाकर प्राणिमात्र के हित के लिए समस्त रोगों को दूर करें एवं पर्जन्य, बादल आदि द्वारा वर्षा का कारण बनकर संसार का उपकार करें। यदि स्वार्थ रूप में अग्नि एवं सुगन्धि को किसी प्रकार से बान्ध लिया जावे तो वह विष एवं विनाशकारी हो जाती है।

यज्ञ की दूसरी भावना है संगतिकरण। यज्ञ संगठन का, मिलकर, स्नेह आत्मीयता से सकल संसाधनों को बांटकर सदुपयोग करने का नाम है। हर व्यक्ति का मन, वचन, एवं कर्म का ऐक्य हो। लोकव्यवहार में हर क्रिया, प्रक्रिया, प्रतिक्रिया में सर्वत्र सद्भाव, प्रेम, भाईचारा व अपनापन हो। जिस प्रकार अग्निहोत्र में यजमान, उद्गाता एवं अध्वर्यु मिलकर एक मन से, एक मत से यज्ञ ब्रह्मा के निर्देशन में एक होकर नियमबद्धता व एकरूपता से लोकोपकार की उदात्त भावना से वेद मंत्रगान, हविदान आदि समन्वय से करते हैं उसी प्रकार जीवन यज्ञ में सर्वत्र प्रेम, प्यार, भाईचारा, स्नेह, सद्भाव आत्मीयता एवं लोकहित की भावना होनी चाहिए।

यज्ञ में यजमान दम्पति परस्पर सौहार्द, प्रेम व समर्पण से मन, वचन व कर्म से एक होने की प्रतिज्ञा करते हैं तो परमेश्वर आयु, विद्या, बुद्धि, बल, यश, पशु, सम्पत्ति, वैभव, सुख प्रदान करता है। संगठन में नियमबद्धता, योजना, सीमाबद्धता एवं एकरूपता आवश्यक है। अग्नि तब तक देव है जब तक यह हवन कुण्ड अथवा रसोई के चूल्हे में आवश्यकतानुसार जलती है, किनारों के बीच में सन्तुलित नदी का प्रवाह गंगा माता कहलाता है। परन्तु सीमा का अतिक्रमण विनाश का निमन्त्रण है। इतिहास साक्षी है कि विश्ववन्द्या सीता माता द्वारा लक्ष्मण रेखा का उल्लघंन विनाशकारी सिद्ध हुआ।

पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, व्यावसायिक सम्बन्धों में व्यवहार, योजना एवं सीमा का अतिक्रमण नाश का द्योतक हुआ करता है। कर्त्तव्य एवं अधिकारों का टकराव जन जीवन को तहस नहस कर देता है। अग्निहोत्र के माध्यम से यज्ञ भगवान संगतिकरण, संगठन का पथ प्रशस्त करता है।

यज्ञ की आत्मा है **'इदन्नमम'** अथवा दान। देने की इच्छा ही संसार का सौन्दर्य है। जीवन के हर व्यवहार में दो धारणाएं विद्यमान है लेना व देना। आदान–प्रदान, लेन–देन परस्पर एक ही सिक्के के दो पहलु हैं। एक क्रिया में दूसरी क्रिया समाहित है। लेना तभी संभव है जब कोई देने वाला हो। इसी प्रकार लेने वाले के बिना देने व दान की क्रिया सम्भव ही नहीं है। जब जब जहां लेने की इच्छा, भावना, कामना बढ़ जाती है तो उस क्षेत्र में समाज में लूटपाट, छीना झपटी, सीनाजोरी, चोरी, डकैती, ठगी, बल प्रयोग, हिंसा का ताण्डव नृत्य होने लगता है। मंहगाई, भ्रष्टाचार, चोरी, ठगी, शोषण, अपराध, हत्या इसी प्रवृति के दृश्यमान दूषित प्रभाव हैं। दूसरी प्रवृति है देना, दान करना, अर्पण करना। आत्मीयता प्यार, सद्भाव, सहचार यज्ञ है। एक मां भूखी प्यारी रहकर कष्ट सहकर सन्तान को खिला पिलाकर पाल पोसकर बड़ा करती है, पत्नी हर कष्ट उठाकर पति और परिवार की सेवा करती हैं। संतान एवं पति हर विपत्ति मां, पत्नी, घर परिवार के लिए समर्पण करता है। पति, पत्नी, माता, पिता, पुत्र, पुत्रियां सारा परिवार एक हो जाता है तो वह घर साक्षात् स्वर्ग बन जाता है जिसमें सभी एक दूसरे को देने तथा एक दूसरे के लिए करने की भावना रखते हैं, मिलता भी तो सभी को है।

इसी सूत्र से हम समाज के हर क्षेत्र को दुकान, मकान, फैक्ट्री, स्कूल, कालिज, सरकार, शासन, प्रशासन सेना में सर्वत्र मूल्यांकन कर सकते हैं। देव पूजा, संगतिकरण व दान का सम्मिश्रण सुख, सम्पत्ति, प्रेम, सौहार्द, सतोष, भाईचारा उत्पन्न करता है। साधनों के प्रयोग, सदुपयोग या दुरुपयोग स्वहित या लोकहित दोनों में भावना का अन्तर है।

कार्य, क्रिया, प्रक्रिया एक है परन्तु फल, प्रतिफल, प्रतिक्रिया में बहुत बड़ा अंतर है। डाक्टर और हत्यारे के चाकू के प्रयोग में, पति और बलात्कारी दुराचारी की यौनाचार क्रिया में केवल भावना का अंतर है। अध्यापक राष्ट्र व समाज के उत्तमोत्तम नागरिक बनाने के लिए पढ़ाता या केवल धनार्जन के लिए। कृषक समाज से अभाव की समाप्ति के लिए अन्न उपजाता है या केवल स्वार्थ सिद्धि के लिए अफीम, पोस्त, डोडा, नशा। सैनिक असहाय की रक्षाहित गोली चलाता है दूसरी ओर एक आततायी अबला से बलात्कार के लिए गोली चलाता है। गोली चलाने की क्रिया समान है। परन्तु भावना व फल का अन्तर है। यज्ञीय और राक्षसीवृत्ति में अन्तर है।

संक्षेपतः यज्ञ जीवन का एक सरल, सहज, सुगम, आनन्ददायी मार्ग है। अग्निहोत्र इसका प्रतीक रूप है। **'इदन्न मम'** इसकी आत्मा है। प्रेम, स्नेह, आत्मीयता मिलवरतन इसके आधार हैं। त्यागभाव से उपयोग इसका लक्ष्य है वेद आदि सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, आप्तपुरुषों, विद्वानों का एक ही उपदेश है। मन, वचन, कर्म से एक होना लोक हित में, सर्वजन सुखाय एवं संसार का उपकार करने के मुख्य उद्देश्य के लिए।

अतः देव यज्ञ जो अग्निहोत्र और विद्वानों का संग सेवादिक से होता है। सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं प्रायः दो काल में करें। और जीवन यज्ञ बनाएं।

प्रधान, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, हरियाणा

पृष्ठ 4 का शेष

कर्म करने के अधिकार का...

क्रास पर कील ठोंक कर लटकाया। उन विरोधियों के लिये परमात्मा पुत्र ईसा ने परमात्मा से माफ करने की विनती की। उन्हें नहीं पता था कि उनके अपने अनुयायी ईस्ट इंडिया कम्पनी बनाकर भारत पर कब्जा करके लूटेंगे तथा जलियाँवाले बाग में निर्दोष निहत्थों को गोलियों से भूनेंगे। क्या इसके लिये भी ईसा ने परमात्मा से माफ करने की विनती की होगी? वर्त्तमान में ईसा का धर्म प्रचार करने के लिये, पाल दिनाकरण द्वारा उनकी प्रार्थना की खरीद बिक्री करके विजय दिलवाने, प्रधान मंत्री तक बनवाने के लिये प्रार्थना का कॉन्ट्रेक्ट करना क्या ईश्वर पुत्र ईसा को सहन होता होगा। कब तक उन्हें लोगो के कुकृत्यों के लिये क्षमा मागनी होगी।'

कैसा समय है आज ? अनपढ़ मजदूरी करके तीन सौ रूपये रोज़ कमा रहे हैं लेकिन इंजीनियरिंग मेडीकल करने वाले बेरोजगार आत्महत्यायें कर रहे हैं।'

इसके अलावा आज स्कूल एवं कॉलेज की लड़कियाँ सुरक्षित नहीं है। सरकार के तरफ से शासन व्यवस्था में ढिलाई के कारण, अत्याचारी धर्मान्ध लोग बलात्कार जैसे महापाप कर रहे हैं। ऐसे को कड़ी से कड़ी सजा एवं मृत्यु दण्ड का नियम बनना चाहिये, ताकि बहनों, बेटियों को कोई कुदृष्टि से न देख सके। भ्रूणहत्या और हत्या को भी रोकना है। इन सबके प्रति सरकार को जागरूक होना है और ऐसी व्यवस्था करनी है ताकि देश की बहू बेटियाँ कहीं आने जाने में निर्भय और स्वन्त्र रहें। फिर भी उनके साथ कोई अपना जन अवश्य होना चाहिये।

'अनुज बंधु भगिनी सुत नारी,
सुनु शठ ये कन्या समचारी।
इनहीं कुदृष्टि विलोकहि जोई,
ताहि वधै कछु पाप न होई।।

(रा. किष्किन्धा–काण्ड)'

मु.पो. मुरारई (प. बाजार)
जिला–वीरभूम (प. बंगाल) 731219

'जीवन की अशान्ति को विवेक से दूर करें'

● मनमोहन कुमार आर्य

आजकल हम किसी व्यक्ति से बातचीत करते हुए यदि उसे टटोलते हैं तो उसमें सुख–शान्ति की कमी अनुभव की जाती है। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति मिल सके जो पूर्णतः सुखी, शान्त व सन्तुष्ट हो। **यदि जीवन में सुख–शान्ति नहीं है तो इसके कारणों को जानकर इन्हें दूर करने के उपाय करना आवश्यक है अन्यथा जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता।** अतः पहले अशान्ति के कारण को जानने का प्रयास करते हैं। सभी मनुष्यों में इच्छाओं का भण्डार भरा होता है। इच्छायें छोटी–छोटी भी होती हैं और बड़ी भी। इच्छाओं का पूरी न होना ही अशान्ति को जन्म देता है। उदाहरण के लिए एक बच्चा स्कूल जाता है और इण्टरवैल में स्कूल के बच्चे स्कूल के बाहर खड़े हुए खाने की वस्तुए खरीदते हैं। अब मान लीजिए कि एक बच्चे के माता–पिता उसे स्कूल जाते समय पैसे नहीं देते हैं। जब इण्टरवैल होता है तो अन्य बच्चे तो अपनी पसन्द का खाने का समान खरीदते हैं परन्तु यह बच्चा पैसे न होने के कारण अपनी इच्छा की वस्तुयें नहीं खरीद पाता अतः यह इस कारण अशान्त हो जाता है और इसका मानसिक प्रभाव बाद के समय में भी रहता है। इसी प्रकार अन्य छोटी छोटी इच्छायें बच्चों व बड़ों में होती हैं जिनके पूरा न होने पर अशान्ति का सामना करना पड़ता है। **अतः इच्छाओं को नियंत्रित करना अशान्ति दूर करने का प्रमुख उपाय है।** दूसरा उपाय है कि हम पुरूषार्थ करें और इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कर लें, तब भी कोई अशान्ति नहीं होगी। पुरूषार्थ करने से जिस क्षण इच्छा की वस्तु प्राप्त होती है, तब कुछ समय के लिए प्रसन्न्ता का अनुभव होता है। **यह नियम व वास्तविकता है कि सभी मनुष्यों की सभी इच्छायें कभी भी पूरी नहीं हो सकती हैं।** अतः ज्ञान के नेत्रों से अपनी इच्छाओं को नियन्त्रित करना आवश्यक है। इच्छाओं के दो वर्ग तो किए ही जा सकते हैं। एक ऐसी इच्छायें जिनके बिना हमारा सामान्य जीवन व्यतीत करने में बाधा आती है। दूसरी वह इच्छायें जिनके बिना तात्कालिक कोई कठिनाई नहीं होती और यदि वह पूरी न हो तो जीवनयापन में कोई विशेष बाधा नहीं आती। अतः पहले तत्काल की आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान देना उचित होता है। उसके लिए जितना पुरुषार्थ आवश्यक है वह कर लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य इच्छाओं की पूर्ति के लिए भी योजनाबद्ध प्रयास करने चाहियें। **यह ध्यान रखना चाहिये कि हम इच्छाओं के दास न बन जायें।** अपना मनोबल ऐसा रखना चाहिये कि यदि इच्छा की कोई वस्तु नहीं मिल रही है तब भी हम शान्त रहें एवं उसका किसी प्रकार का कोई दुष्प्रभाव हम व हमारे व्यवहार पर न पड़े। यहां यह भी देखना है कि इच्छायें जिनकी पूर्ति न होने पर अशान्ति होती है वह प्रायः खाने–पीने की वस्तुओं को लेकर या स्वास्थ्य सम्बन्धी कारण अथवा कार, बंगला, आभूषण, धन, सम्पत्ति, सामाजिक स्थिति, लोकैषण या अपनी सन्तानों व प्रियजनों से जुड़े हुए शिक्षा, रोजगार आदि के प्रश्न हो सकते हैं। **अशान्ति दूर करने के कारणों का तो पता चल गया एवं यह भी ज्ञात हो गया कि सत्य–ज्ञान, पुरुषार्थ व इच्छाओं की न्यूनता से अशान्ति को दूर किया जा सकता।**

यह लोकोक्ति है कि दुःख का कारण अज्ञान होता है। निस्सन्देह यह बात सही है। यदि हमें अपनी अशान्ति व दुःख का कारण ज्ञात हो जाये तो हम ज्ञान से उसे जान लेंगे और उसे दूर करने के उपाय भी अपने स्वाध्याय व चिन्तन–मनन–विश्लेषण से दूर कर सकते हैं। **ज्ञान की प्राप्ति के दो उपाय हैं, पहला है स्वाध्याय व दूसरा विद्वानों के प्रवचन सुनना व उनसे परामर्श करना। स्वाध्याय में प्रमुख ग्रन्थ हैं, महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, योग आदि सभी दर्शन ग्रन्थ, सभी उपनिषदें, मनुस्मृति, बृहति ब्रह्म मेधा आदि ग्रन्थ। ईश्वरोपासना का भी अशान्ति व दुःख दूर करने में प्रमुख स्थान है। प्रत्येक मनुष्य को प्रातः सायं सन्ध्या एवं यज्ञ अवश्य करने चाहिये।** सन्ध्या का तात्पर्य है कि ईश्वर का भलीभांति ध्यान तथा यज्ञ का अर्थ है परोपकार रूपी श्रेष्ठतम कार्य। जो ऐसा नहीं करते वह अपना भावी जीवन दुःखमय बना रहे हैं। **इसका कारण है कि हमारा जीवन ईश्वर की देन है। हमारा यह शरीर ईश्वर ने हमें निःशुल्क दिया है। इस पर उसका अधिकार है। वह हमसे इसका कुछ मूल्य मांगता नहीं है। हमें स्वयं निर्णय करना है कि इस देन के लिए हम उसके ऋण से कैसे उऋण हों। हमारे ऋषि–मुनियों ने इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया और इसका हल निकाला है। इसका हल है कि जिस ईश्वर ने हमें यह मानव शरीर दिया, यह संसार एवं इसके सारे पदार्थ हमारे उपयोग, भोग व सुख के लिए बना कर हमें दिए हैं, उसका हमें आभार मानना है और धन्यवाद करना है, यह धन्यवाद किस प्रकार से किया जाये तो वह कहते है कि प्रत्येक स्त्री–पुरुष को प्रातः व सायं समय में लगभग एक घंटा ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना ध्यान की विधि से करनी है, यही धन्यवाद का प्रकार है।** ऐसा करने से धन्यवाद भी हो जाता है और अन्य लाभ भी होते हैं। अन्य लाभों में **मनुष्य के बुरे गुण दूर होकर ईश्वर के गुणों के सदृश हो जाते हैं। उपासना से आत्मा का बल इतना बढ़ता है कि वह पहाड़ के समान दुःख प्राप्त होने पर भी घबराता नहीं है। क्या यह छोटी बात है? अतः हर आयु के प्रत्येक मनुष्य को नित्यप्रति ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करनी चाहिए।**

अब दैनिक यज्ञ जो प्रातः सूर्योदय होने पर व सायं सूर्यास्त से पूर्व करते हैं, पर विचार करते हैं। यज्ञ में हम एक हवन कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित करते हैं। उसमें घृत व औषधियों की आहुतियां डालते हैं। अग्नि में घृत व आहुतियां जल कर सूक्ष्म हो जाती है और वायु में सर्वत्र फैल कर अन्य प्राणियों के सुख का कारण बनती हैं। वेद मंत्रों का भी यज्ञ में उच्चारण किया जाता है जिससे यज्ञ से होने वाले लाभों का पता चलता है और वेद और इसके मन्त्र जो ईश्वरीय ज्ञान है और जो हमें परम्परा से अपने पूर्व ऋषि व विद्वानों से मिला है, उसकी रक्षा होती है जो कि हमारा कर्तव्य व धर्म दोनों है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो धर्म का पालन न करने के कारण हमें दुःख व कष्टों की प्राप्ति होगी जो कि कोई भी प्राणी नहीं चाहता है। यज्ञ करने से रोग भी दूर होते हैं या जहां रोग नहीं हैं अपितु वहां यज्ञ होता है तो वहां भावी समय में रोग होते ही नहीं या यदि कोई होगा तो वह साधारण होगा और शीघ्र उपचार से ठीक हो जायेगा। अतः इस कारण भी प्रत्येक मनुष्य को यज्ञ अवश्य करना चाहिये। यज्ञ करने का एक आवश्यक कारण यह भी है कि मनुष्य जहां रहता है वहां उसके निमित्त से दुर्गन्ध उत्पन्न होता है। इससे वायु और जल आदि में विकार होकर रोग होने से प्राणियों के दुखों की वृद्धि होती है। दुर्गन्ध का कारण हमारा मल–मूत्र, मुख–हस्त–वस्त्र प्रक्षालनादि कार्य, भोजन बनाने से वायु प्रदूषण एवं जिस घर में रहते हैं वहां का वायु घर की दीवारों से रुक जाने के कारण कीटाणु–युक्त होकर प्रदूषित हो जाता है जिसका निवारण भी यज्ञ से होता है। यदि यज्ञ नहीं करेंगें तो भावी समय में छोटे–बड़े रोगों की आशंका होगी। अतः यज्ञ का करना वैज्ञानिक दृष्टि से भी सिद्ध है। यहां यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि स्वस्थ मनुष्य ही सुखी व शान्त होता है, रोगी या अस्वस्थ मनुष्य अशान्त व दुःखी होता है।

हम समझते हैं कि ईश्वरोपासना, दैनिक यज्ञ, स्वाध्याय, विद्वानों के प्रवचन सुनने आदि कार्यों के करने से मनुष्य के जीवन की अशान्ति समाप्त हो सकती है और इन कार्यों को करते हुए योगाभ्यास भी करते हुए समाधि अवस्था तक पहुंचकर धर्म–अर्थ– काम व मोक्ष को भी सिद्ध कर सकते हैं। यह अवस्था पूर्ण सुख–शान्ति व दुःखों की सर्वथा निवृत्ति व समाप्ति की होती है। समाधि सिद्ध होने पर सभी लौकिक सुखों से अधिक ईश्वरीय आनन्द की अनुभूति होती है। **योगी कहता है कि उसने जीवन में जो पाना था, पा लिया। अब कुछ भी पाना शेष नहीं रहा। इस अवस्था में पहुंच कर जो सुख की अनुभूति होती है, उसकी तुलना में सभी सांसारिक व लौकिक सुख हेय व निम्न–स्तरीय होते हैं। अशान्ति जड़ से समाप्त हो जाती है।** भावी समय में मृत्यु का भी कोई भय नहीं रहता। ऐसा योगी समाज, देश व विश्व के लिए पूजनीय हो जाता है। **आईये जीवन को सुखी व आनन्द से पूर्ण करने के लिए ईश्वरोपासना, यज्ञ, स्वाध्याय, प्रवचन सुनने–सुनाने एवं योगाभ्यास का व्रत लें।**

61/196 चुक्खूवाला–2,
देहरादून–248001

ज्ञान की प्राप्ति के दो उपाय हैं, पहला है स्वाध्याय व दूसरा विद्वानों के प्रवचन सुनना व उनसे परामर्श करना। स्वाध्याय में प्रमुख ग्रन्थ हैं, महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, योग आदि सभी दर्शन ग्रन्थ, सभी उपनिषदें, मनुस्मृति, बृहति ब्रह्म मेधा आदि ग्रन्थ। ईश्वरोपासना का भी अशान्ति व दुःख दूर करने में प्रमुख स्थान है। प्रत्येक मनुष्य को प्रातः सायं सन्ध्या एवं यज्ञ अवश्य करने चाहिये।

पृष्ठ 5 का शेष

विवेक, वैराग्य और...

दयानन्द सरस्वती जी ने भी यहीं कार्य किया। उन्होंने कोई नया मत–मतान्तर, धर्म आदि आरम्भ नहीं किया उन्होंने तो सत्य–सनातन वैदिक धर्म की उसी पताका को, ध्वजा को लहराया जो आदिकाल से हमारे आर्य ऋषि मुनि फहरा रहे थे। उन्होंने हमारी किसी वस्तु, विषय विशेष, सम्बन्ध आदि के प्रति जो धारणायें बनी हुई थीं, जो व्याख्यायें गड़बड़ा गई थी उनको सीधा कर दिया Correct कर दिया, सही रूप दे दिया। उन्हे परिभाषित कर दिया। यदि हमारी धारणायें थोड़ी सी भी गलत हो जाये तो बहुत अनर्थ हो जाता है। मान लीजिए हमने तीर के क्षर एक निशाना साधना है। यदि कमान से ही दिशा थेड़ी सी भी गलत हो जाये तो तीर निशाने पर न पहुँच बहुत दूर जा गिरेगा। यदि धारणायें गलत होंगी तो हमारा आचरण भी गलत हो जायेगा। स्वामी दयानन्द जी ने स्पष्ट कर दिया कि प्रकृति, जीव व ईश्वर में क्या भेद है? धर्म क्या है तथा अधर्म क्या है? सत्य क्या है और असत्य क्या है? आदि–आदि। यह सारा ज्ञान 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ में परिभाषित कर दिया। अब थोड़ा इस पर भी विचार करते हैं कि धारणायें कैसे बनती हैं? जैसा वातावरण होगा वैसे ही विचार होंगे, जैसे विचार वैसा ही तर्क, जैसा तर्क वैसा ही धारणायें, निर्णय और जैसे निर्णय होगे वैसा ही आचरण। इसलिए ऋषि–मुनि जन, सन्त–महात्मा लोग वातावरण यानि संगत पर बहुत बल देते हैं। इसलिए तो कहा जाता है: **जैसी संगत, वैसी रंगत** A man is known by the company he keeps. आईये, अब फिर विवेक पर लौट चलते हैं। विवेक हो जाने से हमें क्या प्राप्ति होती है? क्या लाभ है?

1. विवेकी मनुष्य कभी भ्रान्ति में नहीं रहता, कभी डांवाडोल नहीं होता। स्थित–प्रज्ञ की अवस्था प्राप्त कर लेता है। यदि हम एक दीपक को दूर अन्दर एक गुफा में रख दें तो उसकी लौ/ज्वाला सदैव स्थिर रहती है चाहे बाहर आन्धी–तूफान ही क्यों न चल रहे हों। ठीक यही अवस्था एक विवेकी मनुष्य की होती हैं। सदैव सम–अवस्था में।

2. विवेकी पुरूष वही कार्य करता है जिसके करने से अधिक से अधिक आध्यात्मिक लाभ और कम से कम हानि हो।

3. विवेक हमें छोटे–मोटे दुःखो को सहने के लिए पेरणा देता है ताकि यदि बड़े दुःख आयें भी तो हम उन्हे भी सहन कर सकें। हमे भली–भांति मालूम है कि शरीर मरण धर्मा है और इसका अन्त भस्म ही है। आत्मा अजर–अमर है। इसलिए विवकी मनुष्य मृत्यु से कभी घबराता नही है।

4. विवेक के द्वारा हम संसार को संसार के रूप में जान जाते हैं।

5. विवेक के द्वारा हम अपने स्वरूप को, जीवात्मा के स्वरूप को जान जाते हैं।

6. हम जान जाते हैं कि कोई ऐसी असीम शक्ति है जिसने हमें और संसार को रचा है, पालन कर रहा है और अन्त में सहार भी करता है।

7. विवेक वैराग्य की जननी है।

उत्तम विवेक प्प्ति के लिए आवश्यक है कि हम सत्संग में जाकर ज्ञानी पुरुषों और विद्वानो के उपदेशों को सुनें। आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय कर चिन्तन, मन्थन और निदिध्यासन करें। सर्वोत्तम ज्ञान के लिए प्रभु की शरण में जायें।

विवेक के उपरान्त प्रभु दर्शन का दूसरा सोपान है वैराग्य।

वैराग्य

प्रायः वैराग्य के विषय में हमने गलत धारणायें बना रखी हैं। वैराग्य का नाम आते ही हमारे सम्मुख भगवे वस्त्र आ जाते हैं। हम समझते है कि अपने सासारिक कर्त्तव्यों से मुख मोड़, घर–बार छोड़, बड़े–बड़े आश्रम बना लेना ही वैराग्य है। संसार में अपने किसी सगे–सम्बन्धी, मित्र आदि ने धोखा दे दिया, छल–कपट कर लिया, मन उचाट हो गया और हमने उनसे किनारा कर लिया। यह कोई वैराग्य नही है। राजा भर्तृहरि को भी वैराग्य हो गया था क्योंकि उनकी महारानी ने उनके साथ बेवफाई की परन्तु उनको भी स्थायी वैराग्य तभी प्राप्त हुआ जब उनका विवेक जाग उठा! एक बार राजपाट त्याग जंगलों की ओर जा रहे थे, चांदनी छिटक रही थी। जमीन पर पड़ी एक वस्तु चांदनी में चमक रही थी जैसे कि कोई हीरा हो। मन में लोभ, हीरे के प्रति मोह जाग उठा। बस, जैसे ही उठाने लगे, पान की पीक से हाथ गन्दे कर लिये। कहाँ तो राजपाट तक छोड़ दिया और कहाँ मन में हीरे की ललक अभी तक बनी रही। मन पर पड़े हुए संस्कार आसानी से कहाँ पीछा छोड़ते हैं। राजा ने ज्ञान–विवेक द्वारा अपने वैराग्य को फिर परिपक्व किया।

ऋषि–मुनि जन और विद्वान लोग वैराग्य की परिभाषा इस प्रकार से करते हैं: . उचित को उचित जानकर, मानकर पकड़ लेना और पकड़े रखना व अनुचित को अनुचित मानकर त्याग देना और त्यागे रखना ही वैराग्य है।

महर्षि पञ्जलि वैराग्य की परिभाषा इस प्रकार से करते हैं:

दृष्टानुश्रविक विषयवितृष्णास्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्। अर्थात् अपनी आँखों द्वारा जो देखा है, कानों से जो सुना है, नासिका द्वारा जो सूंघा है आदि–आदि, उनमें सर्वदा अभिरुचि, तृष्णा न रखना, इतना ही नहीं, जिन–जिन रूपों को नहीं देखा, रसों को नहीं चखा, शब्दों को नहीं सुना आदि–आदि, उनमें भी तृष्णा, अभिरुचि न रखना वैराग्य कहलाता है। मदारी जैसे बंदर को बांधे रखता है, वैसे ही मन को बांधे रखना वैराग्य कहलाता है। इस न भोगने की भावना का नाम ही वैराग्य है।

एक वैरागी के लक्षण कुछ इस प्रकार हैं।

1. जैसे सांसारिक लोग भौतिक वस्तुओं को पाकर प्रसन्न होते हैं वैसे ही एक वैराग्यवान व्यक्ति वैराग्य को पाकर आनन्दित होता है।

2. वैराग्यवान व्यक्ति की पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा समाप्त हो जाती है **गुण वैतृष्ण्यम्** की स्थिति बन जाती है।

3. वह कभी किसी को मनसा, वाचा, कर्मणा दुःख नहीं देता।

4. स्वर्ग की इच्छा यानि अगला जन्म अच्छा मिले, यह भी समाप्त हो जाती है।

5. प्राकृतिक तत्वों को जान, अपनी उपलब्धियों का ढिंढोरा पीटने की इच्छा भी समाप्त हो जाती है।

6. मन में प्रत्याहार की अवस्था बन जाती है। यह संसार परिवर्तनशील है, इसके सब सम्बन्ध भी परिवर्तनशील हैं। न जाने हम कितनी बार किसी के पुत्र बने, पिता बने। न इस जन्म से पूर्व इस रूप में थे, न हम मृत्यु के बाद इस रूप में होंगे। ये सम्बन्ध केवल व्यावहारिक है। इनसे कभी स्थाई सुख नही मिल सकता। प्रत्येक सांसारिक सुख, दुःख मिश्रित है, क्षण–भगुर है। सच्चा स्थाई सुख तो प्रभु के साथ सम्बन्ध जोड़ने में ही है।

विवेक और वैराग्य के उपरान्त, मुक्ति प्राप्त के लिए तीसरा सोपान है, अभ्यास।

अभ्यास

महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन में अभ्यास की परिभाषा इस सूत्र द्वारा की है:

स्थितौ यत्नोऽभ्यासः

अर्थात् स्थिति को बनाये रखने में जो यत्न, प्रयत्न या पुरुषार्थ किया जाता है उसे अभ्यास कहते हैं। किसकी स्थिति को बनाये रखने के लिए पुरुषार्थ किया जाता है? **मन की।** अर्थात् अपने मन को एक ही स्थिति में, एकाग्र स्थिति में बनाये रखने के लिए जो **पुरूषार्थ** किया जाता है, उसे अभ्यास कहते हैं। **वह पुरूषार्थ क्या है?** वह है: अष्टांग योग को अपने जीवन में निरन्तर उतारते ही रहना, शक्ति से उतारना और उत्साह से उतारना, सतत उतारना। इसी का नाम अभ्यास है।

यदि कोई व्यक्ति यम, नियम आसन.... आदि को जीवन में उतारता नहीं और केवल मन को एकाग्र करने का अभ्यास करे तो भली–भांति नहीं कर पायेगा।

इस बात को बहुत ही सूक्ष्मता से पकड़ना है।

महर्षि वेदव्यास ने अभ्यास की विशेषताएं गिनाई हैं:–

वीर्यम उत्साह अतः इसके बिना अभ्यास अपूर्ण ही रह जाता है। बलहीन मनुष्य कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता है। एक ही सम स्थिति में मन को बनाये रखने से आत्मा को पाप पुण्य स्पर्श नहीं करते। योगीराज श्री कृष्ण ने भी इसी स्थिति को **समत्वं योग उच्यते** (गीता : 2.48) कहा है। अर्थात् मन की सम अवस्था ही योग है।

क्या हम आध्यात्मिक अभ्यास कर सकते हैं? यानि क्या हम अपने मन को एकाग्र कर प्रभु में नियुक्त कर सकते हैं? क्यों नही? देखिये वरदा वेदमाता इस विषय में यजुर्वेद के माध्यम से हमें प्रेरित कर रही है।

ओ३म् क्रतो स्मर! क्लिवे स्मर! कृतं स्मर!! यजु० 40.15 अर्थात् आत्मन्! तू क्रतु है– कर्मशील है– प्रयत्नशील है। तुम्हारा स्वभाव ही प्रयत्न करना है। अतः अपने प्रयत्न को अपनी सामर्थ्य को जानो और पहचानो। तुम्हें मालूम है कि कितनी बार विवेक को प्राप्त कर, वैराग्यवान बनकर और अभ्यास करके तुमने समाधि लगाई और परमानन्द की प्राप्ति की।

हम प्रायः भूल जाते हैं कि अष्टांग योग का पालन किये बिना मन को एकाग्र स्थिति में बनाये रखना सम्भव नही है। हम में और सत्–पुरुषों में क्या अन्तर है? हम क्रोध करते हुए भी क्रोध न करने का अभ्यास करना चाहते है। जबकि ऋषि–मुनि जन क्रोध न करते हुए, क्रोध न करने का अभ्यास करते हैं। इसी प्रकार काम, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या–द्वेष आदि के बारे में समझ लेना चाहिए। यदि हमारे किसी भी लौकिक कार्य के कारण किसी दूसरे को कष्ट हो रहा है तो यह हिंसा के अन्तर्गत आता है चाहे वह मन, वाणी या कर्म से ही क्यों न हो? ऐसे में हमारा मन एकाग्र हो ही नहीं सकता। इसलिए अपने मन को एकाग्र स्थिति में बनाये रखने के लिए यम, नियम आसन, प्रणायाम आदि को निरन्तर तपपूर्वक, ब्रह्मचर्यपूर्वक, विद्यापूर्वक शक्ति और उत्साह से उतारते रहना चाहिए। इसी का नाम अभ्यास है जो मानव–जीवन के लक्ष्य, मुक्ति, मोक्ष, परमानन्द को प्राप्त करने की अन्तिम सीढ़ी है।

जब मनुष्य के जीवन में विवेक, वैराय और अभ्यास का संगम हो जाता है तो प्रभु के साथ एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है पिता–पुत्र का, माँ–बेटे का, एक सखा का...। ऐसे में वह उस प्रभु का स्मरण करता हुआ, हर समय उसकी व्यापकता से ओत–प्रोत रहता है, उसके आनन्द में निमग्न रहता है। इसी अवस्था का नाम ईश्वर–साक्षात्कार है, मन में एक और केवल एक ही विचार:

"ओ३म् आनन्दम्, ओ३म् आनन्दम्,।
"ओ३म् आनन्दम्, ओ३म् आनन्दम्,।

"स्वामी जी ने परोपकारिणी सभा कब, कहाँ और क्यों बनाई ?"

● खुशहाल चन्द्र आर्य

स्वामी जी ने द्वितीय श्रावण बदी 13 सम्वत् 1939 तद्नुसार सन् 1882 में जब चितौड़ होते हुए उदयपुर पधारे, तब उदयपुर में ही स्वामी जी ने परोपकारिणी सभा की स्थापना की। अपनी सारी सम्पत्ति उसके नाम कर दी। उनका लिखा स्वीकार पत्र (वसीयतनामा) इस प्रकार है।

"मैं दयानन्द सरस्वती, निम्नलिखित तेईस सज्जन आर्य पुरूषों की सभा को अपने वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि का सर्वस्व अधिकार देता हूँ। इसको परोपकार के शुभकार्य में लगाने के लिए अध्यक्ष बना कर यह स्वीकार–पत्र लिखे देता हूँ। ताकि समय पर काम आवे।"

इस सभा का नाम परोपकारिणी सभा है और निम्नलिखित तेईस महाशय इसके सभासद् हैं:–

1 श्रीमन्य महाराजाधिराज, कुल–दिवाकर महाराजा श्री 108 सज्जन सिंह जी वर्मा जी, सी.अस.आई उदयपुराधीश राज्य मेवाड़, (सभापति)

2 लाला मूलराज, एम.ए, एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर, प्रधान, आर्य समाज लाहौर (उप–प्रधान)

3 श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी, उदयपुर, राज्य मेवाड़, मंत्री, (मन्त्री)

4 लाला रामशरन दास जी "उप–प्रधान" आर्य समाज मेरठ (उप–मन्त्री)

5 पाण्डया मोहन लाल विष्णु लाल उदयपुर, जन्मस्थान मथुरा (उप–मन्त्री)

6 श्रीमन्य महाराजाधिराज श्री नाहर सिंह जी वर्मा, शाहपुराधीश (सभासद्)

7 श्री राव तख्त सिंह जी बेदके, राज्य मेवाड़, (सभासद्)

8 श्रीमन्त राजराणा श्री फतेह सिंह जी वर्मा, भीलवाड़ा, (सभासद्)

9 श्रीमत् मावत अर्जुन सिंह जी वर्मा, असन्द, (सभासद्)

10 श्रीमत् महाराजा श्री राज सिंह वर्मा, उदयपुर, (सभासद्)

11 श्रीमत् राव श्री बहादुर सिंह जी वर्मा, मसूदा जिला अजमेर (सभासद्)

12 रायबहादुर पण्डित सुन्दर लाल, सुपरिण्टेण्डेण्ट वर्कशॉप, अलीगढ़ (सभासद)

13 राजा जय कृष्ण दास जी, सी.एस.आई. डिप्टी कलेक्टर बिजनौर, मुरादाबाद (सभासद्)

14 साहू दुर्गा प्रसाद, कोषाध्यक्ष, आर्य समाज फरूखाबाद, (सभासद)

15 साहू जगन्नाथ प्रसाद, फरूखाबाद (सभासद्)

16 सेठ निर्भय राम, प्रधान, आर्य समाज फरूखाबाद विसावर, राजपूताना (सभासद्)

17 लाला कालिचरण रामचरण, मन्त्री आर्य समाज फरूखाबाद (सभासद्)

18 श्रीयुत् छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियद छावनी, मुरार–ग्वालियर, (सभासद)

19 लाला साईं दास मंत्री आर्य समाज, लाहौर, (सभासद्)

20 श्री माधव दास, मंत्री, आर्य समाज, दानापुर (सभासद्)

21 राव बहादुर राजमान्य राजेश्री पण्डित गोपाल राव हरि देशमुख, कौंसल गवर्नर मुम्बई तथा प्रधान आर्य समाज मुम्बई, रहने वाला पूना (सभासद्)

22 राव बहादुर महादेव गोविन्द रानडे, जज पूना (सभासद्)

23 श्रीयत् श्याम जी कृष्ण वर्मा, प्रोफेसर संस्कृत, यूनिवर्सिटी आक्सफोर्ड लण्डन, मुम्बई (सभासद्)

स्वीकार–पत्र के नियम :–

1 उक्त सभा जैसे मेरे जीवन–काल में मेरे सकल पदार्थों की रक्षा करके निम्नलिखित परोपकार के काम में लगाने का अधिकार रखती है, वैसे ही मेरे पीछे अर्थात् मरने के पश्चात् भी लगाया करे।

(A)वेद–वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार, उनकी व्याख्या करने –कराने, पढ़ने–पढ़ाने, छपने–छापने आदि में अधिकार रखती है।

(B)वेदोक्त धर्म, उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक मण्डली नियत करके देश–देशान्तर और द्वीप–द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्यागादि में समय लगावे।

(C)आर्यवर्त के अनाथ और दीन जनों की शिक्षा और पालन में व्यय करे और कराये।

2 जैसे मेरी उपास्थिति में यह सभा प्रबन्ध करती है, वैसे ही मेरे पीछे, तीसरे व छठे मास किसी सभासद् को वैदिक मन्त्रालय के बही–खाते के समझने और पड़तालने के लिए भेजा करें। वह सभासद् वहाँ जाकर सारे आय–व्यय की जांच–पड़ताल किया करे। उसके नीचे हस्ताक्षर करे और उस पड़ताल की एक–एक प्रति प्रत्येक सभासद् के पास भेजें।

3 इस सभा को उचित है कि जैसा यह परम धर्म ओर परमार्थ का काम है, उसको वैसा ही उत्साह, पुरुषार्थ, गम्भीरता और उदारता से करे।

4 पहले कहे तेईस आर्य सज्जनों की सभा मेरे पीछे सब प्रकार मेरे स्थानापन्न समझी जाये अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्व पर है, वही अधिकार सभा को है और रहेगा।

5 जैसे इस सभा का वर्तमान समय में मेरी और मेरे सब सब पदार्थों को यथाशक्ति रक्षा और उन्नति करने का भी अधिकार है। वैसे ही मेरे मृत्तक शरीर के संस्कार का भी अधिकार है। जब मेरा शरीर छुटे तो उसको न गाड़े न, न जल में बहावें, न जंगल में फेंके। केवल चन्दन की चिता बनायें और यदि यह सम्भव न हो तो दो मन चन्दन, चार मन घी, पांच सेर कपूर, ढाई मन अगर–तगर और दस मन काष्ठ लेकर वेद–विहित विधि से जैसा संस्कार विधि पुस्तक में लिखा है। वेदी बनाकर उस पुस्तक में जो वेद–मंत्र लिखें हैं, उनसे भस्म करें। वेद–विरुद्ध कुछ भी न करें। जितना धन इस काम में लगे उतना सभा से ले लेवें और सभा उसको दे देवे।

6 मेरे अपने जीवन में और मेरे पीछे, यह सभा इस बात का अधिकार रखती है, जिस सभासद को चाहे पृथक करके, किसी और योग्य, समजिक आर्य पुरुष को उसका स्थानापन्न नियत कर दे। परन्तु कोई सभासद्, सभा से तब तक पृथक न किया जायेगा, जब तक उसके काम में कोई अनुचित चेष्टा न पाई जाये।

7 मेरे सदृश यह सभा स्वीकार–पत्र की व्यवस्था वा उसके नियमों का पालन वा किसी सभासद् को पृथक करने, उसके स्थान में अन्य सभासद् को नियत करने और मेरे आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में उद्योग करे। यदि संसदों की सम्मति में विरोध रहे तो बहु–सम्मति के अनुसार काम करे। सभापति की सम्मति सदा द्वि गुण समझें।

8 किसी हालत में भी, यह सभा तीन से अधिक सभासदों को, अपराध के सिद्ध होने पर भी पृथक न कर सकेगी, जब तक उनके स्थान में अन्य सभासदों को नियत न कर लें।

9 यदि किसी सभासद् का देहान्त हो जाये या वेदोक्त धर्म को छोड़ देवे तो सभापति को उचित है कि सब सभासदों की सम्मति से उसको पृथक करके, उसके स्थान पर किसी अन्य योग्य वेदोक्त धर्मयुक्त आर्य पुरूष को नियत करे। परन्तु उस समय तक साधारण कामों के अतिरिक्त कोई नया काम न छेड़ा जाये।

10 इस सभा को अधिकार है कि सब प्रकार का प्रबन्ध करे और नये उपाय सोचे। यदि सभा को अपने परामर्श पर पूरा–पूरा विश्वास न हो तो समय का निर्धारण करके लेख द्वारा सभी आर्य समाजों से सम्मति ले और बहु पक्षानुसार उचित प्रबन्ध करे।

11 प्रबन्ध का घटाना, बढ़ाना, स्वीकार या अस्वीकार करना, किसी सभासद् को रखना या हटाना, आय–व्यय की जाँच–पड़ताल करना, अन्य हानि–लाभ विषयों को सभापति वर्ष या छः मास में छपाकर सबको सूचित करें।

12 यदि इस स्वीकार–पत्र के विषय में कोई झगड़ा उठे तो उसको राजगृह में न ले जाना चाहिए। किन्तु जहां तक हो सके यह सभा अपने आप उसका निर्णय करें यदि निर्णय न हो सके तो फिर न्यायालय से निर्णय होना चाहिए।

13 यदि मैं अपने जीते जी किसी योग्य आर्य पुरूष को पारितोषिक देना चाहूँ तो सभा को चाहिए कि उसको माने और दे।

14 मुझे और मेरे पीछे सभा को यह अधिकार रहेगा कि उक्त नियमों को देश के किसी विशेष लाभ और परोपकार के लिए न्यूनाधिक कर सके।

(हस्ताक्षर) दयानन्द सरस्वती।

मैंने यह लेख इसलिए लिखा है कि पाठकगण यह जान जावें कि परोपकारिणी सभा के प्रारम्भिक सभासद् कितने अधिक विद्वान्, सुप्रसिद्ध, सुयोग्य, निःस्वार्थी व समाज के प्रति कितने अधिक समर्पित थे। उनके हाथों सभा पूर्ण सुरक्षित थी। इसके प्रथम प्रधान उदयपुर के महाराज सज्जन सिंह थे, जो बड़े तेजस्वी, प्रतापी व सुयोग्य व्यक्ति थे। उनका सभा पर बहुत अधिक प्रभाव था। जिसके कारण कोई भी एक व्यक्ति अपनी मनमानी नहीं चला सकता था। इसीलिए सभी समाजें उत्तरोत्तर उन्नति कर रही थी। लड़ाई–झगड़ों से मुक्त थी। आज की परिस्थिति परोपकारिणी सभा तथा सार्वदेशिकों की क्या है ? यह बतलाने की आवश्यकता नहीं, सर्वविदित है।

गोविन्दराम आर्य अण्ड सन्स, 180 महात्मा गान्धी रोड, कोलकाता–7

पत्र/कविता

गृहस्थाश्रम का महत्व

गृहस्थाश्रम तो केन्द्र बिन्दु है, अन्य सभी आश्रम का।
सभी आश्रमों की गति ऊर्जा का है इससे रिश्ता।।
जैसे परिधि का हर बिन्दु जुड़ा केन्द्र से रहता।
वैसे हर आश्रम भी इससे ही जुड़कर है चलता।।
जैसे प्राणवायु बिनु कोई जीव नहीं जी सकता।
वैसे ही आश्रम कोई बिनु गृहस्थाश्रम नहीं चलता ।।
गृहस्थाश्रम ही ब्रह्मचर्याश्रम साधक ब्रह्मचारी।
देता, जिससे संस्कृति की धारा रहती सदाबहारी।।
पीढ़ी दर पीढ़ी बहती रहती श्रुति–धर्म समन्वित।
पुरूषारथ के घाटों को करती प्लावित ऊर्जस्वित।।
इसी आश्रम से खुलता पथ वानप्रस्थ आश्रम का।
और यही है पोषक, पूरक गुरुकुल के भी कुल का।।
सर्वतन्त्र, सम्यक् स्वतन्त्र परिव्राट् और संन्यासी।
गृहस्थाश्रम से ही जाते श्रुति–वैदिक प्रभा प्रकाशी।।
जो वसुधा के वसिन को वैदिक सद्पथ दिखलाते।
सामाजिक परिवेश शान्त, शुचि, ऊर्जस्विती बनाते।।
गृहस्थाश्रम में सर्वकार्य–कर्त्तव्यों का कर पालन।
सहज रूप से उऋण त्रि–ऋण से हो जाते गृहस्थी जन।।
पंचयज्ञ, पंचायत पूजा यहां पूर्ण झिलमिलती।
तद्विषयक सब विषय वस्तुऐं यहां स्वाभाविक मिलती।।
गृहस्थाश्रम में धर्माधारित अर्थ, काम का संचय।
जो जन करते हों सतर्क, निर्द्वंद्व, अभय, कर निश्चय।।
उनका गृहस्थाश्रम तो स्वर्गाश्रम स्वमेव बन जाता।
'सहृदयम् सामनस्यमविद्वेषम्' सहज सुहाता।।

दयाशंकर गोयल
1554 डी. सुदामा नगर,
इन्दौर, पिन– 452009 (म. प्र.)

दो सार्वदेशिक सभायें क्यों ?

आज टुकड़े, टुकड़े हो रहा आर्य समाज।
अपनी अपनी डफली अपना अपना राग।।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि आर्य समाज का शिरोमणि संगठन है जिसका कार्यालय 3/5 महर्षि दयानन्द भवन, आसिफ अली रोड, पर स्थित है जो एक रजिस्टर्ड बॉडी है। लगभग 10 वर्ष से कुछ स्वार्थी तथा पदलोलुप लोगों ने इसे मुकद्दमें बाज़ी मे फंसा रखा है। रजिस्टर्ड संस्था तो एक ही हो सकती है जो कानून के अनुसार हो। फिर दो–दो सार्वदेशिक सभाये क्यों? इसके जिम्मेदार लोग आर्य समाज को समाप्त करने पर तुले हुये हैं और आर्य समाज की सम्पत्तियों को हथियाने में लगे हैं। इसलिये साधारण आर्यजन दुखी हैं क्योंकि इस समय आर्य समाज का कोई वाली वारस अर्थात् रक्षक कोई नहीं है जो हिम्मत करके इनको सीधे रास्ते पर लाये। आर्य समाज तो एक परस्पर भाई–चारे का संगठन है परन्तु चुनाव सम्बन्धी झगड़ों से इस समय भयंकर फूट का शिकार है जिसके कारण सब अधिकारियों तथा नेताओं के मन में परस्पर ईर्ष्या द्वेष तथा वैमनस्य की भावनायें भरी हुई हैं। इसलिये स्थिति बड़ी भयानक है जिससे आर्य समाज के अस्तित्व को ही खतरा है। मैं अधिक विस्तार में नही जाना चाहता। हमारी आशा के केन्द्र श्री पूनम सूरी हैं जो महत्मा आनन्द स्वामी जी के पौत्र हैं वह डी.ए.वी तथा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के प्रधान चुने गये हैं। वह बड़े कर्मठ तथा लगनशील आर्य नेता हैं। आर्य जनता को उन्हें पूरा सहयोग देना चाहिये। सबसे पहिले अपने संगठन सार्वदेशिक सभा को बचाने की आवश्यकता है उसके बाद ही आर्य समाज के प्रचार की ओर ध्यान दिया जा सकता है। हमारे देश में पाखंड अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, नारियों से बलात्कार, आतंकवाद बढ़ते ही जा रहे हैं। इसलिये मैं श्री पूनम सूरी जी से निवेदन करता हूँ कि वह चुनाव सम्बन्धी झगड़े समाप्त कराने के लिये आगे आयें, आर्य जनता उन्हें पूरा सहयोग देगी। ईश्वर उन्हें दीर्घायु प्रदान करे।

अश्विनी कुमार पाठक
बी 4/256 सी, केशवपुरम, दिल्ली

****

त्यागमय जीवन बनाना होगा

आर्यजगत साप्ताहिक नियमित मिल रहा है। 31 मार्च 2013 पत्र अभी प्राप्त हुआ अश्विनी पाठक जी का पत्र छपा है क्या आर्य समाज देश का उद्धार करेगा? पढ़कर कुछ विचार प्रकट कर रहा हूँ। क्या आर्य समाज के प्रचारक, संन्यासी, विद्वान निष्पक्ष महर्षि दयानन्द जी तथा वेद के प्रति समर्पित हैं। यदि हैं तो देश का उद्धार संभव है। परंतु तीन–तीन सभाएं बनी हुई हैं।

कोई आर्य समाजी भाजपा, कोई कांग्रेस, कोई समाजवादी, कोई बहुजन समाजवादी, कोई इमेलो, कोई अजित सिंह में शामिल है। इससे तुरंत मुक्त होना पड़ेगा। ध्यान, सत्य त्यागमय जीवन बनाना पड़ेगा। मनु स्मृति तथा वेद के अनुसार सत्ता में, शासन में प्रवेश करना होगा। गुरुकुल शिक्षा–पद्धति के अनुसार गरीब अमीर सभी को शिक्षित करना होगा। तभी बात बनेगी। और भी, जाति के नाम आरक्षण गलत है।

स्वामी दयानन्द विदेह
ओम् साधना मंडल करनाल

****

मृतक संस्कार एवं आर्यसमाज

पौराणिक जन मृतकसंस्कार, शान्तियज्ञ के लिए आर्यसमाज का आश्रय लेते हैं, उनका एक मात्र प्रयोजन समय एवं धन की बचन करना होता है। विवाह आदि संस्कार के प्राति उदासीन होते हैं। विवाह प्रमाण पत्र की मान्यता होने से पौराणिक एवं अन्तर्जातीय विवाह वाले आर्यसमाज का ही आश्रय लेते हैं। आज आर्य समाज 99 प्रतिशत मृतक संस्कार का द्योतक बना हुआ। पौराणिक एवं कुछ आर्य समाजी भी आर्य पुरोहित द्वारा मृतक संस्कार, शान्ति यज्ञ पश्चात् थोड़ी दक्षिणा देकर पौराणिक मतानुसार एकादशा, द्वादशा सेजया दान, मृतक श्राद्धभोज आदि का आयोजन करते हैं, दान की वस्तुये पौराणिक पंडितों एवं उनके मन्दिरों को देते हैं।

ईश्वर, जीव, प्रकृति, लोक, परलोक, जन्म, मृत्यु आदि उपदेश से प्रभावित करने वाले विद्वान, समाज की अन्य संस्कारो के लिए मांग क्यों नहीं अवश्य ही समझाने एवं प्रचार की कमि हैं, आवश्यक है कि पुरोहित आचार्य, पारिश्रमिक, दक्षिणा के साथ प्रचार प्रसार एवं संस्था के विकास के लिए आवश्यक दान की वस्तुऐं, राशि यजमान की स्थितिनुसार अवश्य ही लें, यजमान को अन्य संस्कार के लिए प्रेरित करें।

पुरोहित, आचार्य स्वतंत्र न होकर सम्बन्धित आर्य समाज से रजिस्ट्रेशन (निबन्धन) करा एक निश्चित राशि आर्य समाज को दिलाकर पुरोहित कार्य करे इससे आर्य समाज एवं पुरोहित की पहचान बनेगी और आर्य समाज की गतिविधि, निर्माण प्रचार को बल मिलेगा। संस्था का विचार, संदेश आम लोगों तक जायेगा। हमनें इस दिशा में कुछ कार्य किया है, संस्कारों पर पत्रक बटवाया है, नमुनेका प्रति यो है

नन्दलाल आर्य
आर्य समाज, बेतिया.

****

हम क्रोध, काम और असत्य कार्यों से बचें

● डॉ. अशोक आर्य

प्रभु सुरूपक्रतु है। ऐसे प्रभु का हम प्रतिदिन आराधन करें, जिससे हमारी वाणी मस्तिष्क, मन तथा हाथ, सब सुन्दर बनें। हमारी वाणियां क्रोध रहित हों, मन में काम की सत्ता न आने पावे तथा हाथ लोभ सरीखे असत्य कार्यों में कभी न लगें। इस बात को ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल का यह मन्त्र बड़े सुन्दर ढंग से इस प्रकार उपदेश कर रहा है:–

सुरुपक्रत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुरूमसि द्यविद्यवि।। ऋग्वेद 1.4.1।।

सूक्त तीन में सरस्वती व ज्ञान के सागर का उल्लेख किया था तथा इस के साथ ही इस सूक्त की समाप्ति हुई थी। इसमें बताया गया था कि हम सरस्वती को अधिष्ठाता बनकर ज्ञान रूपी सागर का रूप धारण करें। इस मंत्र में इस तथ्य से ही आगे बढ़ने के लिए उपदेश करते हुए तीन बातों की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा गया है कि:–

1. वह प्रभु ज्ञान स्वरूप व परम ऐश्वर्य से युक्त है। हम लोग उस ज्ञान स्वरूप तथा परम ऐश्वर्य वाले प्रभु की आराधना, उस पवित्र पावन प्रभु का स्मरण करते हुए इस प्रकार कहते हैं कि हम उस ज्ञान के द्वारा (जो ज्ञान विगत सूक्त के मन्त्रों के माध्यम से हमने प्रभु से प्राप्त किया था) उत्तम रूप का निर्माण करने वाले परमात्मा को हम प्रतिदिन पुकारते हैं। परमपिता स्वयं ज्ञान स्वरूप है। वह प्रभु ज्ञान स्वरूप, ज्ञान का भण्डारी होने के कारण हमें सदा ज्ञान बांटता रहता है किन्तु वह ज्ञान देता उसे ही है, जो उसके ज्ञान को पाने के लिए यत्न करता है। जो उस प्रभु से ज्ञान की भिक्षा मांगता है। जो किसी वस्तु की कामना नहीं करता, जो किसी वस्तु को पाने का यत्न ही नहीं करता, जो किसी वस्तु को पाने के लिए स्वयं को योग्य नहीं बनाता, उसे प्रभु कुछ देता भी तो नहीं है। इसलिए मन्त्र कहता है कि हम प्रतिदिन उस प्रभु की आराधना करते हैं। मन्त्र स्पष्ट कर रहा है कि आवश्यकता पड़ने पर प्रभु के चरणों में जाकर बैठ जाना और जरूरत पूर्ण होने पर प्रभु को याद भी न करना, ऐसे लोगों को प्रभु का आशीर्वाद मिलने वाला नहीं है। यदि हमने उस पिता से कुछ पाना है तो नियमित रूप से उसके चरणों में बैठना होगा, नियमित रूप से उसे याद करना होगा, नियमित रूप से उसकी प्रार्थना, उसकी आराधना करना होगा। तब ही वह प्रभु हमारी सुनेगा अन्यथा नहीं। इसलिए हम प्रतिदिन उस प्रभु के समीप बैठकर आराधना करें।

अब प्रश्न उठता है कि हम प्रतिदिन प्रभु का आराधन क्यों करें? क्योंकि वह प्रभु हमारी वाणी को सव्रत वचनों से, ऐसे वचनों से जो उत्तम हों, मीठे हों, सब को आनन्द देने वाले हों, हर्षित करने वाले हों ऐसे सुन्दर वचनों का उच्चारण करने वाली वाणी को बनाकर सुरूप बना देते हैं, उत्तम रूप से युक्त करते हैं। इतना ही नहीं वह प्रभु हमारे मस्तिष्क को भी, मस्तिष्क के साथ–साथ ही हमारे मन को भी सुमतियों से, उत्तम मतियों से भर देते हैं, परिपूर्ण कर देते हैं, सुविचार, उत्तम विचार से लबालब कर देते हैं। इस प्रकार हमारे मस्तिष्क व मन को उत्तम मति वाला बनाते हैं तथा उत्तम विचारों के चिन्तन करने वाला बनाकर वास्तव में इसे सुरूप करते हैं तथा जो प्रभु हमारे हाथों से भी सदा उत्तम कार्य कराते हैं, उत्तम कार्यों की ओर प्रेरित करते हैं। उत्तम कार्य कौन से होते हैं, जिन्हें हाथों से करने के लिए प्रभु प्रेरित करते हैं। उत्तम कार्य यज्ञों को कहा गया है, उत्तम कार्य परोपकार के कार्यों को कहा गया है तथा उत्तम कार्य अग्निहोत्र को कहा गया है, जिससे अपने साथ–साथ अन्यों का भी कल्याण होता है, वह प्रभु हमारे हाथों को ऐसे कार्यों को करने वाले बनाते हैं तथा हाथों से इस प्रकार के उत्तम कार्य कराते हुए इन्हें भी सुन्दर अर्थात सुरूपता प्रदान करते हैं।

2. इस प्रकार के कार्य करने के कारण हम उस प्रभु को सुरूपक्रत्रु कहते हैं। ऐसे सुरूपक्रतु प्रभु को हम रक्षा के लिए पुकारते हैं। जब हम संकट में होते हैं तो अपने संबंधी, अपने मित्र व अपने रक्षक को पुकारते हैं ताकि संकट के समय वह हमारा सहायक बनकर, हमारा रक्षक बनकर हमारा सहयोग करें। हमारी रक्षा करें। पुकारते समय हम देखते हैं कि हमारी रक्षा का सामर्थ्य किस में है, उसे ही हम पुकारते हैं, जिसमें ऐसा सामर्थ्य है ही नहीं, उसे बुलाने का कुछ लाभ नहीं होता। हमारा वह प्रभु सुरूपक्रतु है, इस कारण ही हम उस प्रभु को पुकारते है, वह प्रभु हमारी रक्षा के लिए जो आवश्यक गुण है, उन सब का मालिक है, हम इसलिए उसे पुकारते हैं ताकि वह हमारी रक्षा कर सकें।

मानव अपने स्वार्थ के लिए तथा अनेक बार दूसरों की कमियों के कारण, दूसरों की गलतियों के कारण क्रोध कर बैठता है। इस अवसर पर वह ऐसी कड़वी वाणी बोल जाता है, जिससे सुनने वाले के साथ ही साथ बोलने वाले की भी हानि होती है। इस क्रोध से बचना आवश्यक होता है किन्तु इस से कैसे बचा जावे? जब हम उत्तम गुणों को पाने के लिए सुरूषक्रतु बनने की यत्न करते हैं तो वह सुक्रतु प्रभु हमें क्रोध रहित कर कड़वे वचन बोलने से बचाते हैं। इतना ही नहीं वह प्रभु हमें कामवासना से भी बचाते हैं। कामवासना से भी बुद्धि नष्ट हो जाती है। प्रभु इस से भी हमें बचाकर सदा सुविचारों से युक्त करते हैं, सुविचार वाला बनाते हैं। इस सब के होते हुए भी यदि हमारे अन्दर लोभ आ जाता है तो हम इन उत्तम वृतियों के होने पर भी इनका प्रयोग उत्तम कार्यों में करने के स्थान पर बुरी वृतियों में ही लिप्त होकर धन एकत्र करने लगते हैं, दूसरों का धन छीनने लगते हैं। इस प्रकार हमारी उत्तम वृतियां दूषित हो जाती हैं, बुराईयों से ढ़क जाती हैं। उन उत्तम वृतियों का हम कुछ भी उपयोग नहीं कर पाते। अतः वह प्रभु हमें लोभ की वृति से बचाकर यज्ञीय वृति वाला बनाते हैं, हमें परोपकार करने वाला बनाते हैं, दूसरों की सहायता करने वाला, दूसरों को दान देने वाला बनाते हैं।

3. जिस प्रकार हम एक गो दुग्ध निकालने वाले ग्वाले के लिए उस गाय को ही लाते हैं, जो दुग्ध से लबालब भरी हो। जब ग्वाला दूध निकालने के लिए आता है तो हम यदि उसे गाय के समीप ले जावें, जिसका दोहन पहले से ही किया जा चुका हो तो ऐसी गाय का ग्वाला ओर दोहन क्या करेगा, ऐसी गाय से तो कुछ भी दूध प्राप्त नहीं हो सकता। अतः हमें उसे ऐसी उत्तम गाय पेश करते हैं, जो दोहन के लिए उपयुक्त हो। जिस प्रकार यह गाय दुह कर अमृत तुल्य उत्तम दूध उस ग्वाले के माध्यम से गाय हमें देती है, उस प्रकार ही वह प्रभु भी काम, क्रोध, लोभ आदि से हमारी रक्षा करने वाले हैं, जब हम उन्हें प्रतिदिन पुकारते हैं तो वह प्रभु आ कर उस प्रकार ही आराधक के लिए, उसके लिए, जो उन्हें प्रतिदिन स्मरण करता है, उसे उत्तम ज्ञान से परिपूर्ण कर देते हैं। जिस प्रकार गाय का दूध हमारे शरीर का पोषण करता है, उस प्रकार प्रभु का दिया हुआ यह ज्ञान, आध्यात्मिकता का पोषण करता है।

104, शिप्रा अपार्टमेन्ट,
कौशाम्बी, गाजियाबाद
चलवार्ता 09718526068

रक्ताभवर्धन (हिमोग्लोबिन) बढ़ाने के लिये

रक्ताभवर्धन के लिए निम्न आसन और क्रियायें करें। लाभ होगा।

1 **दीर्घश्वसन**

2 **प्राणायाम** (पूरक, कुम्भक, रेचक, शून्यक)

1 पूरक–प्राणवायु ग्रहण करना

2 कुम्भक–प्राणवायु को धारण करना

3 रेचक–दूषित वायु निकालना

4 शून्यक–दूषित वायु को निकालने के पश्चात् रिक्तता को धारण करना

3 **त्रिबन्ध–**

मूलबन्ध–रेचक करते हुये गुदा संकुचन।

उड्डियान बन्ध–रेचक करते हुये उदर संकुचन।

जालन्धर बन्ध–पूरक के साथ वक्ष विकास

4 **आसन**–वे आसन जिनमे सिर नीचे की ओर रहता है या नीचे की ओर जाता है।

1 दक्षिण में सिर करके व सीधे लेट कर, हलासन, सर्वांगआसन, मत्स्यासन, चक्र आसन

2 उल्टे लेट कर करने वाले आसन है– पर्वत आसन,

3 बैठकर–पश्चिम उत्तानासन, योग मुद्रासन, कुक्कुट आसन, भूनमन आसन

4 खड़े होकर करने वाले आसन–पादहस्ता आसन, अर्धचक्रासन, भू नमनासन, सिर के बल शीर्षसान वृक्ष आसन, उत्तानपादासन।

रक्ताभवर्धन के लिये भैंस का दूध, दही मक्खन, घी–छाछ, मूली, चावल, केला, चीनी आदि से **बचें।**

पेट पतला करने के लिये–सूर्य मुद्रा, अनामिका उंगलि को अगूंठे की जड़ में दबायें बाकी तीन उंगलियां सीधी।

आसन–पवन मुक्त आसन, नौका आसन, भुजंगासन (व नौकासन) ताड़ासन

मूल उड्डियान एवं जालन्धर बन्ध सुबह–सुबह भूखे पेट 2 चम्मच शहद और 2 चम्मच कामधेनु अर्क लिया जाये।

शाम का भोजन, सोने से तीन घण्टे पहले, हल्का, कफ को घटाता साथ ही बादी गर्मी को भी घटाने वाला हो।

689 गोलाई, थांवला 305026
जिला नागौर (राजस्थान)

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 15-16/05/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

R.R. BAWA DAV COLLEGE FOR GIRLS, BATALA

(A Multi-faculty Post-Graduate Institution)

*The only institution in dist. Gurdaspur to have been re-accredited with 'A' Grade by NAAC.
*The only institution under GNDU to have 3 Research Chairs, Women Studies Centre & Legal Literacy Cell.
*The only institution in the region with ultra modern facilities & latest teaching aids.

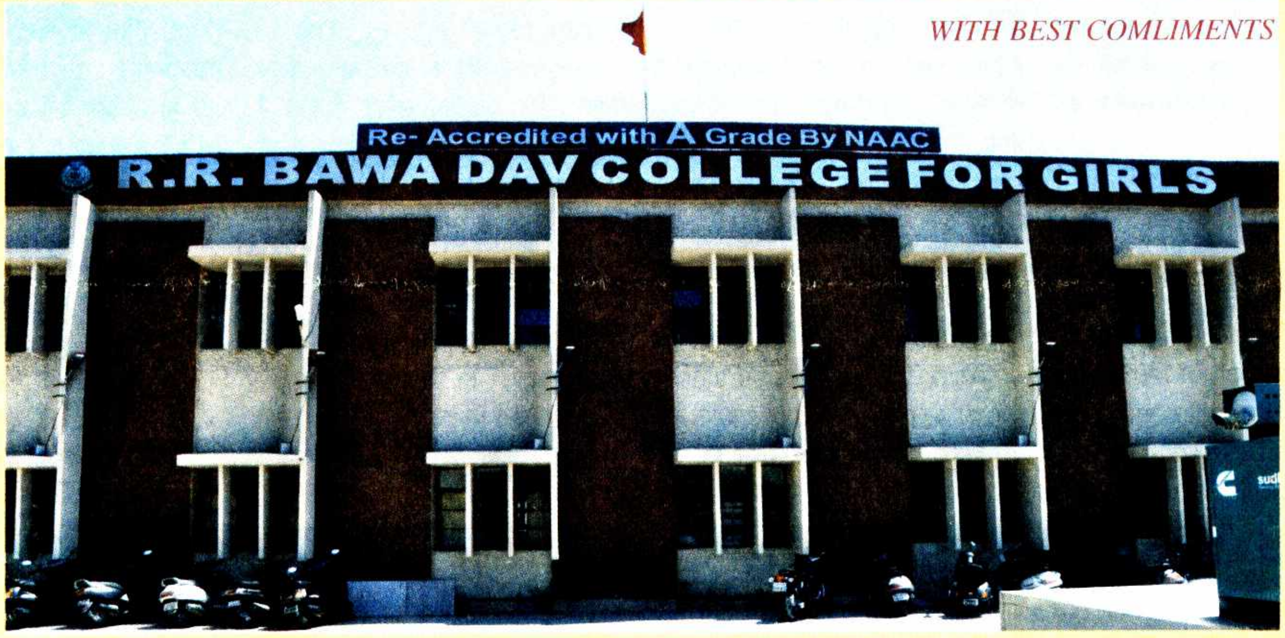

Arya Samaj College Vibhag and family of RR Bawa DAV College for Girls, Batala extend felicitations on Mahatma Hans Raj Day and inauguration of DAV University, Jalandhar.

PROGRAMMES AVAILABLE

SSC-I & II
- Medical
- Non-Medical
- Commerce
- Arts

Under Graduate Courses
- B.A (With vocational subjects) (IT/Cosmetology)
- B.Sc. (Medical)
- B.Sc. (Non-Medical)
- B.Sc. with CND
- B.Sc. (Computers)
- B.Sc. (IT)
- B.Sc. (Economics)
- B.C.A.
- B.B.A
- B.Com (R)
- B.Com (P)

Post PG Diploma
- PG Diploma in Cosmetology & Health Care

Post Graduate Courses & PG Diplomas
- M.Sc. (IT)
- M.Sc. (CS)
- M.A (Punjabi)
- PGDCA
- PGDDDT

Diplomas (After +2)
- Stitching & Tailoring
- Computer Application
- Cosmetology

Add-On-Courses
- Communication Skills
- Fashion Designing
- Computer Animation & Graphics
- Clinical Diagnostic Techniques
- Cosmetology
- Food Preservation

SALIENT FEATURES

- Affordable Fee Structure.
- Special coaching classes for JE Mains + Advance (IIT) and NEET under (UG).
- Individual attention to meritorious students.
- Remedial classes for weak students.
- Compact Time Table.
- Special concession to Meritorious & Talented students and Players.
- Selection of students in Engineering, Medical and Para-Medical Courses.
- Vast campus with Lawns and Playgrounds.
- Smart Class Rooms with portable mimios.
- Well-equipped Labs for all subjects.
- Computer Labs with Audio-Visual Aids and Internet facility.
- Hi-tech Language Lab.
- Fully modernized Cosmetology Lab & Health Centre.
- Well-equipped Digital Library with current Magazines and Newspapers.
- Hostel facility with Homely and Congenial Environment & Food.
- Erudite & Dedicated faculty.
- NSS, NCC & Youth Welfare Departments.
- Active Placement and Career Guidance & Counseling Cell.
- Seminar Hall & Conference Hall.
- Common Room and Visitor's Room.
- Multipurpose Gym and Auditorium.
- Yoga room ; Yagyashala for Meditation.
- Reading Room and Book Bank facility.
- Swimming Pool with International Standards.
- Eco-friendly Campus.
- Wi-fi Campus.

Sh. S.P. Marwaha, Chairperson, LMC

Principal Prof. Dr. (Mrs.) Ajay Sareen

E-mail: rrbawadavcollege@yahoo.co.in Phone No. : 01871-240357, 223781 , Fax No. : 01871-223781 Website: www.rrbdavc.org

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**